पण्डित रघुनन्दन शर्मा

निवेदन।

आज हमें बड़ी प्रसन्नता है कि हम अपने परममित्र पण्डित रघुनन्दन शर्माजी, जो कई वर्षसे सत्कार्य छोड़कर स्वयं छन्द आदि भाषाओंको पढ़कर ऐसे ही वैज्ञानिक विषयोंमें अविश्रान्त परिश्रम कररहे हैं और स्वास्थ्य भी बिगाड़ चुके हैं, उन्हींके उस परिश्रमके फलरूप हम अक्षरविज्ञान नामक ग्रंथको सर्वसाधारणके सम्मुख इस रूपमें रखते हैं।

यह पुस्तक हिन्दी साहित्यके लिये, नहीं नहीं, भारतभरके लिये नूतन, अत्यन्त आवश्यक और बड़े गम्भीर भावको दर्शानेवाला तथा वर्तमान समयकी स्थितिके लिये उपकारी होगा।

हम यह कहेबिना कदापि रुक नहीं सकते कि इस समय हमारे लिये जो विषय नितान्त ही जरूरी था, वही विषय ग्रन्थकर्ताने सूक्ष्म होनेपर भी बड़ी उत्तम तथा सरल रीतिसे, क्रमबद्ध अनेकों प्रमाण और सच्चे तर्क वितर्कोंके साथ, प्रतिपादन किया है क्यों कि—

जिस परमदयालु, न्यायकारी और जगदुपकारी परमात्माके अस्तित्वमें भी आजकलके योरोपीय ढंगसे शिक्षाप्राप्त तथा वैज्ञानिकोंके अन्तर्गत अपना नाम दर्जानेवाले एतद्देशीय महानुभावोंने शंका करनी आरंभ करदी है और बिना किसी गम्भीर विवेचना अथवा विचार-श्रमके ईश्वरकी सिद्धि न माननेके कारण अश्रद्धालु अथ च निरुपाय होकर स्वेच्छावश "इन अनेक जगद्व्यापी ईश्वरीय (न्यायता दयालुता और जगदुपकारिता आदि) शक्तियोंसे ही होनेवाले और अन्यत्र मनुष्यसे न बननेवाले तथा परमात्माकी सत्ता दर्शानेवाले सृष्टिसम्बन्धी अनेक विषयोंके सच्चे इतिहासमें" भी अपने कल्पित कुतर्कोंसे जो कुठाराघात किया है, उस समस्त थियरीका—सारे नास्तिकवादका अर्थात् विकासवादके समग्र सिद्धान्तका युक्तियुक्त समाधान और उत्तर, जो इस पुस्तकमें ग्रन्थकर्ताने दिया है, देखने और विचार करने योग्य है।

जहांतक सम्भव था, हमने इस पुस्तकको ग्रन्थकर्ताके फोटो सहित उत्तम कागज तथा शुद्ध छपाई आदिसे सुंदर बनानेका प्रयत्न किया है तथापि यदि कहीं कोई वर्णाशुद्धि रहगई होगी तो उसे अगले सम्करणमें शुद्ध करनेकी चेष्टा करेंगे।

प्रकाशक।

ओ३म्

प्रस्तावना।

हम लोग तथा अन्य पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसल्मान आदि ने जाने कबसे मानते चले आते हैं कि 'सृष्टिके आदिमें परमात्माने मनुष्योंको ज्ञान और भाषा अवश्य दी' क्यों कि यदि ज्ञान न देता तो अकस्मात् अज्ञात-स्थानमें पहुँचकर आंख खुलते ही सूर्य, चन्द्र, नदी, पहाड़, अग्नि, जल, बिजली, मेघगर्जन, वन, खोह, सिंह, सर्प आदि अपरिचित और भयानक दृश्योंको देखकर एक नवागत मनुष्य घबराकर पागल होजाय और ऊँचा खाली चढ़ाव उतार तथा शीतोष्णका मारा बेताब होकर गिरजाय और प्यासका मारा नो घण्टे ही दो घण्टेमें मरजाय। क्योंकि उसे पानी और प्यासका सम्बन्ध तथा परिचय तो है ही नहीं। उसे यह ज्ञान तो हुआ ही नहीं कि गलेमें और पेटमें जो प्यासकी जलन होरही है वह उस सामने भरे हुए स्वच्छ तरल पदार्थ (पानी से) शान्त हो जायगी यही हाल भूखका भी समझिये।

अलिफलैलाका 'अब्बुलहसन' जो खलीफा-बुगदादके द्वारा बेहोश करके रातके समय राजभवनमें लाया गया था, सुबह उठते ही घबरागया था। वह उस समय और भी घबरागया था, जब उसने दो तीन दिनके बाद (बादशाह हो चुकनेपर) फिर उसी अपने घरकी टूटी खाटपर आंख खोली थी और सोच रहा था कि 'यह हालत सत्य है' या पहिलेकी 'मैं अब्बुलहसन हूँ या खलीफा बुगदाद'?

इन्हीं दलीलों और अनुभवोंके कारण एक दीर्घकालसे विश्वास होरहा है कि आदि सृष्टिमें ज्ञान अवश्य मिला, ज्ञान मिला तो भाषा अवश्य ही मिली; क्योंकि ज्ञानका उपयोग विना भाषाके हो ही नहीं सकता।

यद्यपि इस कुदरती ज्ञान और भाषामें समय२ पर मनुष्योंने अपनी चटनी पापड़ मिला मिलाकर नाना प्रकारके पन्थ मज़हब मतोंकी सृष्टिकी और किसी न किसी ईश्वरी ज्ञान, अर्थात् इल्हामका सहारा भी लिया किन्तु हमेशा हर पथ प्रवर्तक यह भी कहता गया कि 'मैं कोई नया मत प्रकाशित नहीं करता किन्तु पुराने मतोंका ही सुधार (रिफार्मेशन, अर्थात् संशोधन करता हूँ।

शुरूसे आजतकके बडे बडे मशोहरोंको जब हम एक जगह बनाते है तो हजरत मुहम्मद साहबको, ईसा, मूसा और जरदुश्तके मतका अनुयायी पाते हैं। हजरत ईसाको मूसा और बौद्धका अनुयायी पाते हैं। मूसा जरदुश्तका और जरदुश्त तथा बौद्ध वेदोंके गुणानुवाद गाते है। वेदोंके माननेवाले वैदिक ऋषि जिनको ऐतिहासिक दृष्टिसे सारे मतवाले सब विद्याओंका प्रकाशक मानलिया है, अपनी हर पुस्तकमें अपनी प्रत्येक रचनामें, बात बातमें, श्वास श्वासमें वेदोंका ही दम भरते हैं। वे वेदोंको सारे ज्ञानका भण्डार बतलाते हैं। और कहते हैं कि हमने जो कुछ सीखा है, इन्हींसे सीखा है। वे बडे जोरसे दावेके साथ साबित करते हैं कि–'बुद्धिपूर्वावाक् प्रकृतिर्वेदे' (वैशेषिक, अर्थात् वेदोंकी वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक अर्थात् ज्ञानयुक्त है। उसमें ऊटपटांग कोई बात नहीं है। ऋषियोंका यह कथन कल्पना नहीं है। वेदोंकी भाषा बहुत पुरानी होनेपर भी उसकी शैली उसका क्रम नष्ट होजानेपर भी आज वेदोंके अनेक स्थल बडे सरल भावसे बडी २ विज्ञानकी बातें, बडे २ सामाजिक नियम, बडे २ राजनैतिक विचार, ब्रह्मचर्यकी शिक्षा, सस्कार, वर्णाश्रमधर्मकी गूढ कुंजियाँ, वैद्यक ज्योतिष, भूगर्भ, रसायन और रथ, जहाज, विमान आदिकी चर्चा उत्तम रीतिसे करते हैं। ऋषि लोग वेदोंको सब विद्याओंका भण्डार कहतेहुए उन्हें ईश्वरदत्त बतलाते हैं। वे कहतेहैं कि वेद ईश्वरका श्वास है।

यह सिद्धान्त अखण्डरूपसे कोई नहीं कह सकता कि कबसे मानाजाता हुआ आजतक उसी प्रकार मानाजाताहै। कुछ लोगोंको छोडकर शेष सारा संसार इल्हाम अर्थात् ईश्वरी ज्ञानका अबतक कायलहै।

यद्यपि पूर्व समयमें भी कभी कभी किसी २ स्वच्छन्द–विचार–विद्वान्ने इस बातसे इनकार किया है–इस विश्वासका विरोध किया है–इसके विरुद्ध पुस्तकें लिखी हैं और वेद, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि सिद्धान्तोंका तिरस्कार किया है तथापि दर्शन और विज्ञानका सहारा लेकर विद्वानोंने उनका उसी समय खण्डन भी किया है और फिर उसी पुरानी थातीका जीर्णोद्धार करके कायम रक्खा है।

यद्यपि इस प्रकारके और इससे भी अधिक भयानक सैंकडों हमले हुए, पथ मत सम्प्रदाय भी हजारों चले किन्तु इस प्रबल ऐतिहासिक और दार्शनिक घटनाको कि "बिना सिखाये ज्ञान नहीं आता इसलिये आदि सृष्टिमें ईश्वरने ज्ञान दिया" किसी न किसीरूपमें सब मानते रहे और इस्लामके

नामसे इसी सिद्धान्तकी नकल करते रहे, जिसका परिणाम कुरान बाइबिल गाथा और ग्रंथसाहब आदि हैं। मतलब यह कि आदि सृष्टिसे लेकर आजतक यह सिद्धान्त जीता जागता, गर्जता तर्जताहुआ संसारमें हिमालयकी तरह अटल रहा और सर्व धर्मोंके तारतम्य कारण कार्य और ऐतिहासिक क्रमसे वेदधर्म ही सबसे प्राचीन और सब धर्मोंका पिता तथा वेद भाषा ही सब भाषाओंकी जननी साबित होती रही। गत शताब्दीके बहुभाषाभाषी प्रोफेसर मेक्स मूलरने भी अपने 'चिप्स फ्राम एजर्मन वर्कशाप, नामी ग्रंथमें लिखा है कि—

'संसारकी लाइब्रेरी (पुस्तकालय) में वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है'

यही नहीं किन्तु प्रोफेसर मेक्स मूलर संसारकी भाषाओंके अनेक भेद करके सब भेदोंको दो बडे भागोंमे बाँटतेहैं। वे कहतेहैं कि संसारकी सब भाषायें आर्य और सेमिटिक दो महाभाषाओंकी शाखा और प्रशाखा हैं। इन दोनोंमेंसे आर्यभाषान्तर्गत संस्कृतभाषाको बडी ही उत्तम और परिपूर्ण बतलायाहै।

पाठक! अब मिश्रकी भाषाने सिद्ध करदिया है कि आर्य और सेमिटिक भाषा भिन्न २ दो भाषा नहीं किन्तु एक ही किसी भाषाकी दो शाखा हैं। मिश्रभाषामे सब धातु आर्यभाषाकी प्रकृतिके है किन्तु व्याकरण रचना सेमिटिक जैसी है। सेमिटिक भाषाकी प्रतिनिधि अर्बीका व्याकरण संस्कृतसे मिलताहै और समस्त आर्यभाषायें संस्कृतभाषासे निकली हैं, जैसा कि दूसरे प्रकरणसे ज्ञातहोगा। सस्कृतभाषा वेदभाषासे निकली है अतः संसारकी सब भाषायें वेदभाषाकी ही शाखा प्रशाखा हैं। तात्पर्य यह कि जितनी भाषा हैं सबका मूल वेदभाषा है, इसको विद्वानोने अनेक बार सिद्ध किया है और विद्वानोंने ही मान भी लिया है किन्तु 'भाषाके साथ अर्थका क्या सम्बन्ध है' यह प्रश्न है—जिसने हमें इस पुस्तकके लिखनेकी प्रेरणा की।

वेदभाषा वैदिक शब्दोंसे बनी है और वैदिक शब्द अपनी २ धातुओंसे बने हैं। धातु सब अक्षरोंसे बने हैं, अब प्रश्न यह है कि दो, एक अथवा ढाई तीन अक्षरोंके योगरूप एक ध्वनि(जिसे धातु कहतेहैं)का अमुक अर्थ क्यों कियाजाताहै? क्यों 'पा' का अर्थ 'रक्षणे' किया जाताहै? और क्यो 'चदि' का अर्थ 'अह्लादे' बतलाया जाताहै?

यह प्रश्न मुझे अनेक दिनोंसे हैरान किये हुए था। मैं सीधे सादे विश्वासके कारण जानता था कि वेद ईश्वरी ज्ञान है इन वेदोंकी धातुओंका अर्थ किसी न किसी दिन अवश्य वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध होगा। किन्तु

थोड़े दिनके बाद मैंने प्रोफेसर मैक्स मूलरके ग्रंथमें यह पढ़ा कि "किस प्रकार शब्द विचारको प्रगट करताहै ? किस प्रकार धातु विचारोंके चिह्न होजातेहैं ? जैसे 'मा' धातु नापने अर्थमें लीगई और 'मन' धातु विचार अर्थमें 'गा' जाने 'स्था' ठहरने 'दा' देने 'मर' मरने 'चर' चलने और 'कर' करने अर्थमें मानागया ?" (देखो लेकचर आन दी साइंस आव लाग्वेज भाग १ पृष्ठ ८२) इसके आगे आप कहतेहैं कि "इस प्रश्नका उत्तर न तो आजतक किसीने दिया और न दियाजा सकेगा । मेरा कुतूहल बढ़गया । मैं वारीकीसे इसे सोचने लगा । संस्कृत साहित्यकी गूढ़ गठनका अवलोकन करने लगा । कुछ दिनके बाद मुझे जान पड़ा कि मेक्स मूलर साहबने जल्दी की । यदि वे धैर्यके साथ संस्कृत साहित्यका अवलोकन करते तो आपसे आप सब धातुओंके अर्थोंका सम्बन्ध मालूम होजाता । वे जानजाते कि संस्कृतमें एक एक अक्षरका भी अर्थ विद्यमान है । किन्तु उन्होंने एकाक्षर अर्थपर कभी विचार ही नहीं किया, नहीं तो सब उलझन सुलझजाती और धातुओंका वैज्ञानिक अर्थ उन्हें ज्ञान होजाता क्योंकि संस्कृतमें प्रायः सभी मूलाक्षरोंका अर्थ प्रचलित है यथा—

अ—नहीं, अभाव (अव्यय) । आ—भलीभाँति कुछ । ई—गति । उ—और, यह । ऋ—गति । ऌ—गति । क—वासना, रोकना, प्रश्न करना (कः किं का) ख—आकाश, पोल । ग—गति । च—पुन । ज—उत्पन्न होना । ज्ञ—नाश होना । ड—करना । (डुकिञ्) त=तार । दा=देना । धा=धारण करना । न—नहीं । पा—रक्षा करना । भा—प्रकाश करना।मा—नापना। य—जो।र—देना । ला—लेना । व—गति । स—शब्द करना,साथ होना और ह—निश्चय आदि ।

इन्हीं सब मूलाक्षरोंसे धातु बने हैं । यदि इन अक्षरोंका वैज्ञानिक रीतिसे अर्थ सिद्ध होजाय तो आप ही आप समस्त धातुओंका अर्थ सिद्ध होजायगा क्योंकि सब धातु तो इन्हींसे बने हैं। धातु क्या भाषाका उपादान ही ये अक्षर हैं।

मेरा विश्वास है कि भाषाओंके ही शब्द नहीं किन्तु जो कुछ शब्दमात्र होताहै, सब इन्हीं वैदिक ६३ अक्षरोंके अन्तर्गत है । पशुओं, पक्षियोंकी चिल्लाहट अथवा पानी, लोहा, पत्थर, लकड़ी आदिकी आवाजें या मृदङ्ग, सितार आदिकी ध्वनियां सब इन्हीं ६३ अक्षरोंमें ही अन्तर्गत हैं । गौके बछड़ेको 'बाँ' और बिल्लीके शब्दको 'म्याँ' तथा छोटी २ चिड़ियोंके शब्दको

'चूँ चूँ' कहना इस बातका बड़ा भारी प्रमाण है कि गाय, बिल्ली और चिड़ियोंके मुखसे ये शब्द निकलते हैं। इसी प्रकार 'ठन ठन' वा 'खट खट' की आवाजें भी अपने शब्दों अर्थात् उन उन अक्षरोंके ही कारण 'ठन ठन' वा 'खट खट' सुनाई पड़तीहैं।

मुझे इस बातपर उस दिन विश्वास हुआ था, जिस दिन मेरे उस्ताद, जो मुझे मृदङ्ग सिखलाते थे दूरसे 'किट तक' और 'तिर कट' का भेद मालूम करलेते थे। उन्हें 'तिरकट' में किट तककी गलती तुरन्त मालूम होजाती थी।

जब हम सारे विश्वके शब्दोंमें वही ६३ अक्षरोंको ही फैलाहुआ पाते हैं तो विवश होकर विचार करना पड़ता है कि इन शब्दोंके साथ वैज्ञानिक रीतिसे कुछ अर्थका भी सम्बन्ध होगा। प्रत्येक आवाजके उच्चारणसे मनमें जो कई रसोंका प्रादुर्भाव होता है इसका भी कोई कारण अवश्य है। क्यों किसी अक्षरकी ध्वनिमें मधुरता और किसीमें कठोरता है? क्यों टवर्ग कठोर और सकार मकार कोमल सुकुमार समझे जाते हैं? क्यों कोई शब्द भयदायक और कोई करुणामय सुनाई पड़ता है? क्यों कौवेके 'कायँ कायँ' और कोयलकी 'कू' मे जमीन आसमानका अन्तरहै? अन्तरका कारण साफ है। देखो—

प्रत्येक अक्षर अपना २ उच्चारण अलग २ रखता है। हर ध्वनिका आकार प्रकार अलग २ है, अतएव सबका भाव, अनुभव, असर और अर्थ भी अलग २ है। 'कोमल' 'मंगल' 'सरस' 'आनन्द' और 'घृणित' 'कठोर' 'क्रोध' 'भ्रष्ट' आदि शब्द अपने अपने रूपमे ध्यान देने योग्य हैं।

आज यदि किसी अँगरेजसे प्रश्न किया जाय कि 'Father (फादर) का अर्थ 'पिता' क्यों करते हैं? 'वृक्ष' अर्थ क्यों नहीं करते? तो वह जवाब देगा कि यह शब्द लेटिन भाषामें 'पिटर' और जेंदमें 'पितर' था। अनुमान है कि लेटिनसे ही आकर अगरेजीमें 'फादर' होगया है और उन्हींके माफक लेटिन अर्थ भी माना गया है। इसी तरह जेंदवाले भी कह देते हैं कि यह सस्कृतके 'पितृ' शब्दसे हमारे यहा आया है और उसी अर्थमें भी है। अब हम सस्कृतके पडितोंसे पूछते हैं कि आप 'पिता' शब्दका अर्थ बाप न करके 'वृक्ष' क्यों नहीं करते? पण्डित उत्तर देतेहैं कि 'पिता' शब्द 'पा—रक्षणे' धातुसे बना है इसलिये हम 'पा' का अर्थ 'रक्षा' करतेहैं। किन्तु जब

हम पण्डितोंसे फिर पूछतेहैं कि 'पा-रक्षणे' न करके 'पा-पद्गतिं' (वृक्ष) अर्थ क्यों नहीं करते ? तो उसका मुख बन्द होजाताहै । उसीका मुख बन्द नहीं होजाता किन्तु समस्त संस्कृतज्ञो और निरुक्तको छोड़कर सारे संस्कृत-साहित्यका दम घुटने लगताहै और सबका स्वोंका त्यों रहजाताहै कि शब्दके साथ अर्थका क्या सम्बन्ध है ? *

मेरा बहुत दिनसे विचार था कि इस विषयमें कुछ माथामारी करूँ और किसी प्राचीन शिक्षापुस्तकके द्वारा इस जटिल ग्रन्थिको उन्मुक्त करडालूँ, किन्तु हजार हाथ पॉव मारनेपर भी कुछ नतीजा न निकला कोई प्राचीन शिक्षापुस्तक न पा सका । केवल संस्कृत साहित्य अवलोकन करने लगा और प्रत्येक अक्षरके भावपर ध्यान रखतेहुए अर्थोंपर भी विचार करने लगा । कुछ दिनके बाद सबसे पहिले मुझे 'अकार' और 'हकार' का विचित्र अर्थ-कौशल ज्ञात हुआ । मुम्बईमें बापूजी शिवकरजी तलपदेसे मिलकर इस विषयमें और भी अधिक उत्तेजना मिली और क्रम क्रम 'सरगुजा राज्य' की रम्यवनस्थलीमें कोई ४ वर्ष लगातार परिश्रम और अविश्रान्त चिन्ता करनेपर समस्त मूलाक्षरोंके स्वाभाविक भाव ज्ञात होगये । केवल अर्थ ही ज्ञात न हुए किन्तु अर्थोंके साथ उनके स्वाभाविक रूपो (चित्रो) का भी पता लगगया।

जब मुझे इन अक्षरोंके अर्थो और रूपोकी एक कुदरती श्रृंखलाबद्ध अर्थ-परिपाटी ज्ञात हुई तो मैंने प्रसन्न होकर यह बात इधर उधर अपने पढ़ेलिखे मित्रोसे कहना शुरू की । संस्कृतके विद्वानोंने तो इसे उपेक्षासे सुनलिया और प्रसन्न होकर कहदिया कि हाँ परिश्रम सराहनीय है, किन्तु अगरेजीशिक्षा सम्पन्न सभ्योंने मुझे बनाना शुरू किया । उन्होंने कहा "तुम अजब आदमी हो, तुम्हें यह पुराना सडा खप्त क्यो सूझा ? भाषा भी कहीं कुदरती होतीहै? भाषा क्या कोई सर्दी गर्मी है, जो कानून कुदरतके माफिक होगी ? भाषा तो बिलकुल कृत्रिम चीज है । वह शुरूसे आखिरतक एकदम मनुष्योंकी कल्पना है । हम रोज सैकडों शब्द बनते हुए देखतेहैं । कहो अभी हम सैकडों शब्द बनादें ! अतएव जब शब्द ही कृत्रिम हैं तो इनका कुदरती

* केवल निरुक्तकार ही लोग इस विद्याको जानते थे । निरुक्तकार इसीमें रहे हैं । मुनिके पूर्व शाकपूणि आदि ऋषि इन विद्याके ज्ञाता होगये हैं ।

(स्वाभाविक) और नेचुरल अर्थ क्या होगा ? शुरूमे मनुष्य बिल्कुल बोल नहीं सकता था, वह 'ऊँ' 'आँ' 'कूँ' 'काँ' तथा नाक मुख आँख और हाथोंके इशारोंसे काम चलाता था। पश्चात् उन्हीं 'कूं' 'काँ' की अधिकता हुई और धीरे धीरे 'कूँ' के साथ 'रोटी' 'चो' के साथ पानी और इसी प्रकार 'दा' के साथ देना, 'ग' के साथ जाने आदिका अर्थसम्बन्ध होगया और जरूरतों तथा कुदरतकी चीजोंके साथ यही 'कूं पूं' बडे २ शब्दोंके रूपोंमे परिवर्तित होगये, अतः इन शब्दोंका कोई स्वाभाविक अर्थ हो ही नहीं सक्ता। हाँ, यदि आदि सृष्टिमे मनुष्य मनुष्यही रूपमें पैदा हुआ होता तो हम मानलेते कि उसको भाषा कुदरतकी ओरसे मिली, क्यों कि मनुष्य विना सिखाये बोल नहीं सकता किन्तु जब मनुष्य आदिमें मनुष्य था ही नहीं, जब वह पहिले बन्दरका बच्चा था, बन्दरसे गौरेले (वनमनुष्य) का बच्चा हुआ और गौरेलेसे मनुष्य होगया तब उसमें कुदरती भाषा कहासे आई ? और जब कुदरती भाषा ही नहीं तो कुदरती अर्थ कहासे होगा ?'[1]

मैंने पहिले तो ये बातें दो चार ऐसे भले आदमियोंके मुहसे सुनी जिन्हें मैं प्रायः आवारा समझा करता था, किन्तु जैसे २ मैंने अगरेजीशिक्षासम्पन्न महानुभावोंसे मुलाकात बढाना शुरू की वैसे ही वैसे मालूम होतागया कि जिन लोगोंने मेट्रिकसे लेकर आगेतक अगरेजी शिक्षा प्राप्त की है तथा कुछ सृष्टिसम्बन्धी धार्मिक झगडोंमें रहतेहैं और वैदिक सिद्धान्तोंके मार्मिक रहस्योंसे कोरे हैं वे प्राय सबके सब इसी इवोल्यूशन थियरीके, इसी विकाशवादकी बाढके शिकार होचुके हैं। चाहे वे आर्यसमाजी हो या धर्म समाजी, मुसलमान हो या ईसाई यदि उन्होंने योरोपीय विज्ञान, प्राणी धर्मशास्त्र और वनस्पति शास्त्र तथा विकाश आदिकी दो चार पुस्तके पढी है, यदि उन्होंने डार्विन स्पेंसर आदिकी रचना देखी है तो निस्सन्देह सबके सब विकाशवादी हैं—नेचरिया है। इसमे प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं है। इनके लिये यह प्रबल प्रमाण है कि उन्होंने ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करनेवाली ईवोल्यूशन थियरीके खण्डनमे आजतक कोई पुस्तक नहीं लिखी। भारतवर्षका यह मार्मिक दृश्य देखकर, न जाने कबकी सौंपी हुई धरोहरमे घुन लगते देखकर भीतर ही भीतर धार्मिक मर्मारिथयोंको चकनाचूर होते देखकर और धार्मिक पुरुषोको बेवकूफोंकी जमात नाम पाते देखकर अन्त करण चिल्लाकर रो उठा—और

भीतर ही भीतर विचार हुआ कि लोगोंने बुरी तरह धोखा खाया । विज्ञानका नाम बनाकर इन्हें अज्ञान सिखाया गया, गुड़ दिखाकर ईंट मारी गई । किन्तु फिर विचार हुआ कि नहीं, धोखा नहीं खाया, उन्होंने जो सच समझा उसे माना, झूँठ क्यों माने ? झूठ चाहे स्वदेशी हो व विदेशी, न खरीदना चाहिये, किन्तु सत्य चाहे विदेशी हो या स्वदेशी, अवश्य ग्रहण करना चाहिये, किन्तु थोड़ी देरमें आप ही आप यह विचार हुआ कि सत्य और झूठकी पहिचान क्या है?

जबतक सारी सृष्टिके मूल तत्त्वों, उनके भेदों उनके गुण कर्म स्वभावों तथा संयोग वियोगों और आकर्षणानुकर्षणों अथवा उनके कार्य कारण सम्बन्धोंका हस्तामलक ज्ञान न हो, सृष्टिकी आदि सीमा और अन्तिम रेखातक दृष्टि प्रवेश न कर जाय, जबतक सारा विश्व ब्रह्माण्ड आप खोलते ही अपनी सच्ची हकीकत न कहने लगे, प्रकाश, विद्युत, सर्दी, गर्मी, सूर्य चन्द्र, नदी, पहाड़, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग सबके सब बिना किसी रुकावटके अपनी अपनी सच्ची हकीकत न कह दें, यथार्थ क्या है, जबतक बिना भ्रम और संशयके हृदयङ्गम न होजाय, तबतक 'अमुक ही सत्य है' क्या ऐसा कहना कभी सत्य, हो सकता है ? क्या केवल सौवर्ष जीनेवाला मनुष्य इतना कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकता है ? क्या केवल ज्योतिष गणित भूगोल इतिहास आदि विषयोंमें ही आयु पूर्ण नहीं होजाती ? जब ये सब बातें सत्य हैं तो मनुष्य सत्य असत्यका अन्तिम निर्णय (फैसला) नहीं कर सकता ? किन्तु

पाठक ! हमारे इन अन्तर्भावोंका उत्तर एक आस्तिक बुद्धिने उसी समय इस प्रकार दे दिया कि, इस जगत्की असली हकीकत वही जान सकता है जो इसकी असलियतका जाननेवाला (परमेश्वर) है । उसने हमारे लिये हमारे बुजुर्गोंको शुरूमें सब आवश्यक और आध्यात्मिक तथा सत्यमानि सूक्ष्म विषयोंको बतला दिया है जिन्हें हम बुनियादी (इल्हाम वाह) हैं । उसीपर विश्वास किये रहो और निश्चय जानो कि एक न एकदिन योरोपकी ये समस्त उटपटाग थियरी झूँठी साबित होंगी । इस वक्त तुम हँसोगे, वे रोयेंगे, क्यों कि तुम विश्वासी हो, सचमें हो । किन्तु उसी समय एक आधुनिक विज्ञानवादीने कहा—'जो ! क्या मन ! यह कुछ भी नहीं है । यह सब भीख माँगनेवाला जात है । हमने अपने परिश्रमसे आजतक बहुत कुछ जाना है और इसी प्रकार आगे भी जाननेकी आशा है ।

तर्क, विज्ञान और दर्शनसे काम लेते चलेजाव एक दिन सब उलझने सुलझ जायँगी और सबकुछ जानजावेंगे'।

पाठक! योरोपीय उत्तरोंको सुनकर मैंने उनके सिद्धान्तोंको एक अरसे तक ध्यानमे रक्खा और समय २ पर उनपर विचार करता रहा। अखीरमे मुझे उनकी सारी थियरी गलत जानपड़ी और ज्ञान होगया कि वे लोग अभी सृष्टिनियमे बिलकुल बच्चे हैं। किन्तु हाँ उनके विचार करनेकी शैली विकट है। वे नीचेसे ऊपरको नहीं चढते बल्कि ऊपरसे नीचेको जातेहैं। वे कारणसे कार्यकी जाँच नहीं करते किन्तु कार्यसे कारण जानना चाहतेहैं (जो मनुष्यकी बुद्धिसे बाहर है) अत: हम भारतवासी पढेलिखे धार्मिकोंसे कहतेहैं कि आप लोगोंमें जो पारस्परिक धर्मान्दोलन होरहेहै वे निकम्मे है। तुम पहिले पाश्चात्य विज्ञान-धर्मके साथ आन्दोलन करो और उसे परास्त करो। यदि तुम उसे परास्त नहीं कर सकते,यदि तुम्हारे सिद्धान्त योरोपीय विज्ञानशैलीके काटनेवाले नहीं हैं, यदि वे केवल'इतिश्रुतेः' पर ही अवलम्बितहै और यदि कलिकालको कोसनेतक ही आपका तर्क शास्त्र है तो कानखोलकर सुनलो, सावधान होकर समझलो और चस्मा लगाकर देखलो कि 'तुम्हारे विश्वासोंका मूलोन्मूलन भीतर ही भीतर होगया है। यहबात निर्विवाद है कि 'पचास वर्षके बाद, आज जिन मसजिदों और मन्दिरोंके लिये सैकड़ों आदमी गोलीका शिकार बन रहे हैं और जिस वेदधर्मकी रक्षाके लिये गुरुकुल और काशी विश्वविद्यालयके खोलनेवाले तन मन धनसे कुर्बान होरहेहैं, उन्हींकी सन्तान विना किसी दबावके आपसे आप उक्त मन्दिरों, मसजिदों और वेद शास्त्रोंसे दस्तबरदार होजायगी। और वे धार्मिकसंस्थायें, वे मन्दिर और मसजिदें आपसे आप अनाथ होकर थोडे ही दिनोंमे नष्ट भ्रष्ट हो जायँगी, धूलमे मिलजायँगी'।

हम धर्मसभाओंमें श्राद्ध-खण्डन और मूर्तिमण्डनके लेकचर सुनतेहैं, मुसलमानों और आर्योंके मुबाहसे देखते हैं और हँसतेहैं कि ये लोग आपसमें एक दूसरेको निर्बल समझकर बहादुरी दिखला रहे हैं, क्यो कि गरीबकी औरत सबकी भावज।

इन अन्ध श्रद्धालु दुरामहकारियोंको खबर ही नहीं है कि हम यहाँ लडरहे हैं, उधर हमारा लडका जो कालेजमे पढताहै, चुपके चुपके विकाशवादी है, वह वेद शास्त्र बाइबिल कुरानको नहीं मानता । उसको ईश्वर पुनर्जन्मपर पन्द्रहआने विश्वास नहीं है । वह केवल कष्टके समय ईश्वरपर और उच नीच व्यक्तियोंको देखकर पुनर्जन्मपर विश्वास करलेताहै । यद्यपि यह हालत ईसाई मुसलमान हिन्दू सिक्ख सभीमें पाई जातीहै, पर याद रहे कि यह मौका सबसे अधिक खतरनाक आर्यसमाजके लिये है, जिसका दावा है कि—

'वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है और सब सत्य विद्याओंका आदि मूल परमेश्वर है' ।

पाठक ! यद्यपि पहिले मेरा विचार था कि मैं केवल अक्षर विज्ञानका एक छोटासा ट्रैक्ट (पुस्तिका) निकालदूं किन्तु जब भाषाविज्ञान और मनुष्य सृष्टि तथा ईश्वर आदि विषयोंपर उपरोक्त अनेक प्रकारकी शकाओंका प्रचण्ड प्रवाह उमडता हुआ दिखा तो उन सब शकाओंका समाधान करते हुए ही अक्षरविज्ञान लिखना मुनासिब समझा । यही कारण है कि मूलविषय एक प्रकरणमें और सहकारी विषय दो प्रकरणोंमें पूरे हुए हैं ।

इस पुस्तकमें तीन प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें बतलायागया है कि सृष्टिका रचनेवाला परमेश्वर अवश्य है । आदिमें मनुष्यका आकार मनुष्य ही था बन्दर नहीं । सारी सृष्टि एकही स्थान अर्थात् हिमालयपर ही पैदा हुई थी । मूल पुरुष भाषा बोलतेहुए ही पैदा हुए थे और जो शब्द बोलते थे वे अर्थ और ज्ञानयुक्त थे । दूसरे प्रकरणमें दिखलायागया है कि वह आदि ज्ञान वेद और आदि भाषा वैदिक थी । इसकी पुष्टिमें बतलाया गया है कि ज्योतिष वैद्यक नीति धर्म व्यापार और राज्यप्रणाली पृथ्वीभरमें भारतवर्ष और वेदसे ही फैली है तथा सम्पूर्ण जेन्द, फारसी, अंगरेजी, अर्बी, साल्डी, चीना, जापानी और द्राविडी आदि समस्त प्रधान २ भाषायें, जो अपनी अनेक शाखाओंके साथ दुनियाभरमें फैली हैं, वेदभाषासे ही निकली हैं । सब भाषाओंके शब्द देकर यह विषय प्रमाणित कियागया है ।' तीसरे प्रकरणमें बतलायागया है कि वेदभाषा मनगढन्त नहीं है । उसके धातु सृष्टि नियमके अनुकूल और एक एक अक्षरविज्ञानके अनुसार नाना २ अर्थ

रखता है, अत अर्थके अनुरूप ही उन अक्षरोका रूप भी बनाया गया था और ऋषि लोग वदिक कालमें भी लिखना जानते थे।

ये सब बातें विशेषकर आधुनिक योरोपीय शैलीसे ही प्रतिपादित की गई हैं। हा, कहीं कहीं ऋषियोंके भी विचार दिये गये हैं। इस प्रकारसे हमने इस पुस्तकको समाप्त किया है।

यद्यपि मैं ऐसी पुस्तकोंके लिखनेकी योग्यता कदापि नहीं रखता और न मुझे उचित ही था कि मैं ऐसे गहन गम्भीर दुर्ज्ञेय विषयोंमे हाथ डालता किन्तु मैं विवश था, मेरा अन्तरात्मा विचलित था, मैंने योरोपीय विज्ञानको दूरतक सोचनेके बाद उसे अपूर्ण और अशृङ्खल पाया था, ऐसी हालतमें मनुष्योंको भ्रमसे बचाना और देशके इतिहासकी सरक्षा करना मेरा कर्त्तव्य था, अतएव मैंने अपने इनजीके उद्गारोंको—मानसिक भावोंको इस रूपमें, इस आकारमे ढालकर आपके सामने रक्खा है। आपको यदि इतिहास और उसके प्रभावकी कुछ 'कदर है' यदि आपको ज्ञात है कि मनुष्य अपनी और अपने सम्बन्धियोंकी सच्ची बडाईसे कुछ बल और उत्तेजना प्राप्त कर सक्ताहै और सच्चे धर्मसे सुखी हो सक्ता है तो इससे लाभ उठाइये और एक योग्य कमिटी बनाकर इस विषयका एक अच्छा परिपूर्ण ग्रंथ बनवाकर देशके होनहार बच्चोंके लिये पहिलेसे ही रख छोडिये।

इस पुस्तकमें मैं जानता हूँ कि भाषासम्बन्धी और विषयप्रतिपादन सम्बन्धी अनेकों दोष होंगे पर निर्दोष रचना क्या सदोष मनुष्यसे सम्भव है? यह पुस्तक अपने विषयकी मुकम्मिल पुस्तक नहीं है किन्तु अपने विषयकी आरम्भिक भूमिका है तथापि अपने विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंका सार सञ्चित किया है। इस पुस्तकके लिखनेमें जिन पुस्तकोंसे मुझे सहायता मिली है उनके लेखकों और सम्पादकोंका मैं हृदयसे आभारी हूँ। सबसे अधिक मैं पूज्य अपने परममित्र ठाकुर सूरजी वल्लभदास वर्मा (मुम्बई निवासी) का हूँ, जिन्होंने मुझे हर प्रकारकी सुविधा देकर इस पुस्तकके सम्पादन करनेमें समर्थ किया है।

रघु–

अक्षरविज्ञानकी-सूची।

विषय-	पृष्ठ.

अक्षरविज्ञान

पहिला प्रकरण १.

शब्दके साथ अर्थका विचार करनेपर सहसा यह प्रश्न उपस्थित होजाताहै, कि "क्या शब्दके साथ अर्थका कोई स्वाभाविक सम्बन्ध है ? क्या आदि सृष्टिमे पैदा हुए मनुष्य बोलते थे ? यदि बोलते थे तो शब्द अर्थका संयोग कुदरती रीतिसे उनको मिला था या क्या ? यदि अर्थज्ञानका सम्बन्ध उनको पैदा होते ही मिला था तो किसकी ओरसे मिला था ? क्या कोई अन्तरिक्षमे ज्ञानरूपा चेतनशक्ति भी है ! " बस यहींतक प्रश्नोंकी गति है । यहीं तक प्रश्नशृङ्खला चलती है । इस भावको सामने रखकर प्राचीन कालके ऋषियोंने जो उत्तर दिया है उसे हम यहाँ नहीं लिखना चाहते किन्तु योरपके विद्वानोंने जो इसपर विचार किया है, जिसके अनुसार उनके शास्त्र बने हैं, और जिन शास्त्रोंको पढकर लोग विकाशवादी हुए हैं, उन विचारोंको, उस शृङ्खलाको, थोडेमें, सारांशरूपसे, हम यहाँ दो पैराग्राफोमें, वर्णन करदेना चाहतेहैं ।

इसे विकाशवाद कहें या ह्रासवाद।

(क) आजतकके योरूपीय विज्ञानका निचोड़ यह है कि "प्रकृति (मैटर) का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप ईथर (आकाश) है, उसमें दो गुण है । पहिला—उसके परमाणुओंमें गतिका होना, दूसरा—उसकी गर्मीका क्रमक्रम कम होना । परमाणुओके कम्पन और तरङ्गावलीसे, शब्द, प्रकाश, गर्मी और विद्युत आदि होते हैं और उसके ही क्रमक्रम ठंढा होनेसे वायवीय तरल और कठोर पदार्थ बनते

हैं। इसी प्रकार ग्रह उपग्रह भी बनतेहैं, जिनमेंसे हमारी पृथिवी भी एक है, यह सारा खेल एकमात्र ईश्वरका है। ईश्वरके पूर्व उसपर सत्ता रखनेवाला कोई दूसरा ईश्वर, परमात्मा आदि नहीं है।

(ख) पृथिवीके ठंढा होजानेपर उसमें एक बीज पैदा हुआ, उस बीजकी अनेक शाखायें होगईं। अनेक शाखाओंमें परिवर्तन शुरू हुआ और ये शाखायें वनस्पति तथा प्राणी बनगईं। प्रत्येक प्राणी अपने पिताके गुण रखते हुए भी कुछ विलक्षण होता गया और अपनेमें विलक्षण अपने पुत्रको बनाता गया। पुत्र भी इसी प्रकार विलक्षण वंशवृद्धि करता गया, परिणाम यह हुआ कि बहुत कालके बाद मूलप्राणी अपनी पहिली आकृति,प्रकृतिसे बिलकुल ही विलक्षण होगया। तद्वत् प्रथम बनेहुए मूलबीजकी अनेक शाखाओंमेंसे एक शाखाके विकाशका परिणाम यह मनुष्य भी है।मनुष्यका बाप मेंढक, छपकली होता हुआ बन्दर हुआ और बन्दरसे वनमनुष्य होकर मनुष्य होगया। भिन्न २ देशवासी मनुष्योंके रूपरंग भाषा और विश्वाससे ज्ञात होताहै कि वे भिन्नभिन्न अनेक स्थानोंमें उपरोक्त क्रमानुसार पैदा हुए, और एक दीर्घ कालतक एक दूसरेसे अपरिचित रहे। जिस प्रकार रोजके अनुभव,तकलीफ, आराम,नफा,नुकसानके नतीजोंने धीर धीरे ज्ञान प्राप्त करते गये उसी तरह पहिले 'कूँ, कूँ,' 'आँ,आँ,' 'चूँ, चूँ,' 'माँ, माँ,' आदि बोलते रहे और उसीसे अमुक २ पदार्थ लेते देते रहे, धीरे २ वही कूँ, कूँ आदि उस उस वस्तुके लिये शब्द बनगये और इसी प्रकार भाषा बनगयी। इस विकाशके अनुसार ज्ञान और भाषाकी उन्नति वर्तमान समयतक पहुँची है, जो सबके सामने है।

यह चुम्बुकरूपसे वर्तमान योरोपीय विज्ञानवेत्ताओंका अन्तिम और अटल सिद्धान्त है। इसीको बुनियादी पत्थर मानकर उनके दर्शन, वैद्यक, ज्योतिषादि सभी विद्याओंके सिद्धान्त कायम किये जातेहैं। और इसीकी शिक्षा दीजातीहै। आज अंग्रेजी भाषामें इस विषयके हजारों ग्रंथ उपस्थित हैं और रोज अनेकों ग्रंथ लिखे जारहेहैं। इन ग्रंथोंको देशी, विदेशी सभी पढतेहैं, और इन्हींके अनुसार गुप्त व प्रकट अपना २ विश्वास रखतेहैं।

यद्यपि विदेशियोंने ही इन सिद्धान्तोंके खण्डनमें भी सैकडों ग्रन्थ लिखे हैं पर भारतमें आजतक इसके विरुद्ध सर्वाङ्गको देखते हुए एक भी ग्रंथ नहीं लिखागया। हम धार्मिक सभाओंमें बडे २ बी. ए. एम. ए. विद्वानोंको लेक्चर देते हुए और यह कहते हुए देखतेहैं कि हमारा धर्म, हमारे सिद्धान्त पूर्ण और सच्चे हैं पर उसकी रक्षामें उनकी महान् उपेक्षा है। शोक!!!

उपरोक्त विकाशवादके सारांशमें दो पैराग्राफ हैं। एक ईथरसे लेकर पृथिवीतक, दूसरा बीजसे लेकर आजतक। इस दूसरे सिद्धान्तका विस्तृत उत्तर आगे चलकर इसी प्रकरणमें दिया जायगा किन्तु पहिले पैराग्राफका उत्तर यहीं दिये देतेहैं। पहिले पैरामें कुंजीकी बात, तत्त्वकी बात एक ही है जिसको हम यहां फिर दोहराये देतेहैं।

"योरपका विज्ञान प्रकृतिमे परिवर्त्तन मानताहै। वोह मानताहै कि ईथर क्रमक्रम ठंढा होरहाहै, इसीसे उसकी हालत बदलती रहतीहै"। योरूपीय विज्ञानको यह बात विवश होकर मानना पडीहै, ससारका प्रत्येक पदार्थ नया, पुराना, बनता, बिगडता, जवान, वृद्ध होता देखनेमें आताहै। सूर्यकी गर्मीका कम होना, समुद्रोका धीरे धीरे सूखते जाना, पहाडोंका टूटना आदि सभी तो परिवर्त्तनशील दृश्य हैं, इसीसे उसे भी परिवर्त्तनशील मानना पडा है। किन्तु अब हम उससे पूछतेहैं कि—"**क्या परिवर्त्तनशील होना किसी पदार्थका स्वाभाविक गुण होसक्ताहै? क्या स्वभावमें परिवर्त्तन होसक्ताहै**"?? कभी नहीं—हरगिज नहीं. स्वभावमे परिवर्त्तन नहीं होता। परिवर्त्तनशील होना स्वाभाविक गुण नहीं है। जब स्वभावमे परिवर्त्तन नहीं होता (उदाहरणके लिये) जब घडीकी सुईका घूमना स्वाभाविक नहीं है तब इस प्रकृतिका सूक्ष्मसे स्थूल होना ईथरकी गर्मीका क्रमक्रम ठंढा होना और संकुचित होना कैसे स्वाभाविक होसक्ताहै? क्या इसकी गर्मी कम होते २ किसी दिन बिलकुल ही कम न होजायगी? क्या फिरती हुई घडीकी सुई किसी न किसी दिन बन्द न होजायगी? घडीकी सुई फिरती हुई एक दिन जरूर ठहर जायगी। उसीतरह ईथरकी गर्मी कम होते २ एक दिन बिल्कुल शीतल होजायगी। 'कम होना' यह अस्थायी गुण है। जितने अस्थायी पदार्थ हैं सब परिवर्तनशील

होतेहैं और जितने परिवर्त्तनशील पदार्थ हैं सब किसी न किसी दिन स्टाप होजातेहैं—ठहर जातेहैं । अतः यह सृष्टिभी परिवर्त्तित होतीहुई किसी न किसी दिन अवश्य स्टाप होजायगी—ठहर जायगी ।

यह भी एक दार्शनिक नियम है कि जो चीज कहीं जाकर ठहरती है वह जरूर कहीं न कहींसे चली हुई होती है, अर्थात् जो चीज किसी दिन ठहरने वाली है वह किसी न किसी दिन जुरूर चलीहै मतलब यह कि जिसका अन्त है, उसका आदि भी है । और जिसका आदि है, उसका अन्त भी है ।

घडी किसी न किसी दिन ठहरेगी । अतः वह किसी न किसी दिन जुरूर चली है । पर याद रहे कि घटी स्वय नहीं चलपडी थी, किसीने उसे चलाया था और चलानेवाला चेतन (ज्ञानी) था इसी प्रकार इस परिवर्त्तनशील अर्थात् किसी दिन ठहर जानेवाली और किसी दिन चली हुई प्रकृतिका चलानेवाला भी कोई दूसरा था और नि सन्देह चेतन (ज्ञानी) था अन्यथा इसके चलानेकी उसे याद ही कहासे आती !

यदि प्रकृतिमे स्वय चलपडनेका स्वभाव * होता तो इसमें परिवर्त्तन न होता क्योंकि स्वभावमे परिवर्त्तन कभी गर्मी, हलचल आदि अस्थिर गुण नहीं होते 'स्वभाव' नाम ही उस पदार्थका, जो अपने द्रव्यके साथ नित्य और एक रस रहे, किन्तु यहां मैटरमें उसके स्वभाव—विरुद्ध, दो बडे सयोग वियोगात्मक परस्पर विरोधी गुण एक कालमें एकही जगह, नियमबद्ध होकर काम करते-हुए देखे जातेहै, इससे सिद्ध होताहै कि इस प्रकृतिमें ये कृत्रिम और अस्थिर गुण किसी दूसरी जबरदस्त ताकतकी ओरसे डाले गयेहैं इसी सिद्धान्तको लेकर साख्यकार कहतेहै कि — ।

'अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्'

कार्य न होनेपर भी इस प्रकृतिका योग जबरदस्ती कराया गयाहै । अर्थात् कार्यरूप होना यद्यपि इसका स्वभाव नहीं है तथापि इस काममें यह जबरदस्ती लगाई गई है । जिसने इसे इस कार्य्यमे लगाया है, साख्यकार कहतेहैं कि:—

---

* सान्त, परिच्छिन्न और जड परमाणुमें अनन्त गति हो नहीं सकती ।

'स हि सर्ववित् सर्वकर्ता'

वह महान् शक्ति निस्सन्देह सर्वज्ञ और सर्वकर्ता है । उसी महान् शक्तिको हम लोग परमात्मा कहतेहैं । फिर सांख्यकार कहतेहैं कि हमलोग

'ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा'

इस प्रकार ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध करतेहैं ।

पाठक ! नियममें बँधी हुई इस परिवर्त्तनशील प्रकृतिको किसी विज्ञानमय व्यापक शक्तिने कार्यमें नियुक्त कियाहै, अतः मानना पड़ेगा कि प्रकृतिके ऊपर भी-ईश्वरके ऊपर भी एक ज्ञानवाली चेतनशक्ति है जिसके आधीन यह सारी प्रकृति और उसकी रचना है । उसी प्रबल न्यायीशक्तिने जीवोंपर दया करके उनके कर्मफलोंको देने दिलानेके लिये इस सृष्टिकी रचना की है ।

हाथसे फेंकाहुआ रोडा जिस प्रकार पहिले क्षणमें तीव्र गतिवाला होताहै और अन्तमें मन्दगति होकर गिर जाताहै । इसी प्रकार यह प्रकृति भी आदिमें अधिक वेगवाली थी । उसका वेग अब क्रमक्रम घटता जाताहै । यद्यपि वह नयेनये ग्रह उपग्रह चाहे अब भी बनाले पर स्मरण रहे कि वे ग्रह उतने टिकाऊ न होंगे, जितने पुराने थे । वे ग्रह और अन्य सारे ग्रह उपग्रह किसी न किसी दिन रोडेकी भाँति क्षीणगति होकर गिर जायँगे—सारी प्रकृति ठहर जायगी—और महा प्रलय होजायगी । अतः इस क्षीणप्राय दशाको 'ईवोल्यूशन थियरी' वा 'विकाशवाद' नाम रखना सरासर विज्ञानके विरुद्ध है । मेरी रायमें यदि इसे 'डिवोल्यूशन थियरी' या 'ह्रासवाद' कहाजाय तो बेजा नहीं।

पाठक ! जब विकाशवाद ही सिद्ध नहीं होता तो क्रम २ उन्नतिका सिद्धान्त कैसे कायम रह सकताहै, और कैसे माना जा सकताहै ? कि निकृष्ट प्राणियोंसे उत्कृष्ट प्राणी बने—बन्दरसे मनुष्य बना ? अतएव उपरोक्त योरोपीय विज्ञानके प्रथम पैराके सारांशका समाधान होगया—अब द्वितीय पैराका उत्तर देतेहैं ।

दूसरे पैरामें वर्णित विषयके निम्नोक्त तीन प्रश्न हो सकतेहैं ।

१ क्या आदि सृष्टिमें मनुष्यका बाप मनुष्यहीथा, अथवा विकाशवाद (डार-

विनथियरी) के अनुसार क्रमक्रम किन्हीं दूसरे प्राणियों (बन्दरों) की शकलोंमें होताहुआ 'यह मनुष्य' वर्तमान मनुष्य हुआ ?

२ क्या आदि सृष्टिमें 'मनुष्य सृष्टि' किसी एकही स्थान पर हुई, अथवा पृथ्वीके भिन्नभिन्न भागोंमें ?

३ क्या मनुष्य कोई न कोई भाषा बोलता हुआ ही पैदा हुआ, अथवा उसने क्रम क्रम बहुत दिनके बाद कोई भाषा बनाली ?

इन्हीं प्रश्नोंकी उधेड़ बुनमें पड़कर बहुधा लोग हैरान हो जातेहैं और मनमानी कल्पनाओंसे काम लेकर भ्रममें पड़जातेहैं । अतएव हम इन शङ्काओंका यथाबुद्धि उत्तर देते हुए अपने कर्तव्यका पालन करतेहैं ।

उत्तर तीनही प्रकारसे दिया जासकताहै । पहिला वैज्ञानिकरीतिसे अर्थात् सृष्टि नियमोंके अनुसार । दूसरा योरोपीय विद्वानोंके मतानुसार । तीसरा भारतीय प्राचीन ऋषियोंके अनुसार । हम इन तीनों प्रश्नोंके निर्णयमें तीनोंही प्रकारके उत्तर देतेहैं और निर्णय करना विचारशील पुरुषोंपर छोड़तेहैं । *

पहिले प्रश्नका उत्तर ।

क्या मनुष्यका बाप बन्दर था ?

वेबिलनके कबरोंसे जो मनुष्यकी लाशे निकलतीहैं विद्वानोंने उनको सात हजार वर्षकी पुरानी बतलाया है । वे वैसीही हैं जैसे आज कलके मनुष्य हैं । इसी प्रकार स्पेनमें गायोंकी तसवीरें मिलीहैं जो२०हजार वर्षकी हैं और वैसी ही हैं जैसी इन गौओंकी तथा खींचनेवाले मनुष्य भी ऐसेही वल्कलधारी थे जैसे अब हैं। देखो चिल्ड्रेन मेगजीन फरवरीसन् १४, इसके अतिरिक्त चीनके मरु मैदानोंमे खोदनेसे मनुष्यकी जो बस्तियाँ पाई गईहैं

---

* यद्यपि इस सिद्धान्तको कि ' मनुष्य बन्दरकी सन्तान है ' डारविन अथवा उसके सहकारी सिद्धान्तरूपसे नहीं मानते, वे केवल अनुमान करतेहैं । क्योंकि उनको अभी पूरी ' लिङ्क ' (शृङ्खला) नहीं मिली तथापि जितने अङ्कको उन्होंने मानाहै और लिखाहै, उसके खण्डनमें भी हजारों पुस्तकें वहींके विद्वानोंने लिखीहैं पर भारती अङ्गरेजीदाँ अब तक इसी सनकमें हैं कि ' मनुष्योंके बाप दादे बन्दर ही थे ' । इसमें उनका कुसूर भी नहीं है क्योंकि धर्मसभाओंके नामधारी और महामहोपध्यायों तथा एम ए बी ए. वाले लेक्चरारों और धार्मिक लीडरोंने धर्मपिपासुओंको कहाँतक शान्ति देनेका प्रयत्न कियाहै वे अपने हृदयपर हाथ धरकर अपने आत्मासे पूछें ।

उस समयकी हैं, जब वहाँ समुद्र नहीं था। वस्तकि बाद समुद्रका आना और न जानें कब रेतको छोडकर चलाजाना, बतला रहाहै कि 'मनुष्य अपनी इसी शकलमें लाखों वर्ष पूर्व भी इसी प्रकारका था जैसा अब है'। क्योंकि वहाँ जो मनुष्य सम्बन्धी पदार्थ पायेगये हैं वैसेही हैं जैसे इस समय पाये जातेहैं। अतः हम इस विषयको संसारकी आयुके साथ जाँचतेहैं।

संसारकी आयु नियत करनेमें योरोपीय पण्डितोंका मतभेद होते हुए भी जो सख्या अखीरमें निर्धारित हुईहै, हम नीचे देतेहैं और गणितसे इस बातकी जाँच करतेहैं कि क्या डारविनका मत सत्य है।

योरोपके धर्माचार्योंने अन्तिम निर्णय लिखा है कि संसारको पैदा हुए ६९८४ वर्ष हुए।

पदार्थ विज्ञानी लोग गर्मी प्रकाश और ग्रह आदिके तारतम्यसे जो समय नियत करतेहैं वह ४००००००० चालीस लक्ष वर्ष हैं।

भूगर्भविद्याके पण्डितोने बडी सावधानीके साथ जाच करके सिद्ध किया है कि पृथिवी दश करोड वर्षकी पुरानीहै।

समुद्रविद्याविशारद ' प्रोफेसर जोली' ने समुद्रके खारीपनेकी जाँच करके बतलाया है और फैसला करदियाहै कि समुद्रका पानी, इसप्रकार खारी, दश करोड वर्षमे हो सकताहै। इसी अन्तिम निष्पत्तिकी वजह 'जोली' महाशयको विलायतकी 'रायल सोसायटी'ने स्वर्णपदक देकर सम्मानित कियाहै।

पृथिवीका बनना जब आरम्भ हुआ था, रेडियमके द्वारा उस समयसे लेकर आजतकका एक समय और निकाला गयाहै, जिसकी मर्यादा ७५०००००००० सात अरब पचास करोड वर्ष है। पर यह समय नियत करते २ आविष्कर्ता स्वयं कहताहै कि 'ऐसे तो यह सख्या अनुमानसे परे प्रतीत होतीहै परन्तु वास्तवमे रेडियमकी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली गणनाका यह फलहै' अतः बडे सकोचके साथ ७५०००००००० सात अरब पचास करोड वर्षकी पृथिवी ज्यादासे ज्यादा कूती जातीहै।

इस पृथिवीपर कितने प्राणी और कितनी वनस्पतिहैं, यह जान लेनेपर परिणाम साफ निकल आयेगा ।

कुछ वर्ष पूर्व स्पेंसर साहबने अपने एजुकेशन नामी पुस्तकमें लिखाथा कि "वनस्पति विषयके जाननेवालोंने वनस्पतियोंके जो भेद किये हैं उनकी संख्या ३२०००० तीन लाख बीस हजारतक पहुँची है और प्राणिशास्त्रके ज्ञाताओंको प्राणियोंकी जिन २ तरह २ की सूरतोंसे काम पडताहै उनकी संख्या कोई २०००००० बीस लाख है" (देखो शिक्षा प्रकरण पहिला विषय ६९) ।

स्पेंसरके बाद और भी जांच हुईहै और कई लाख योनियाँ और नई दरियाफ्त हुईहैं । भारतवर्षकी गणना करनेवालोंने तो ८४००००० चौरासी लक्ष योनियोंकी गिन्ती की है * इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर सुनोः—

निकाशवादवाले कहतेहैं कि आदि सृष्टिमें एक जन्तु था । क्रम २ उसीके इतने भेद होगये हैं । हमने आपको मनुष्यका इतिहास बतलाया था कि बीस हजार वर्षकी तो उसकी चित्र कलाही रक्खीहै और लाखों वर्षकी उसकी अन्य चीजें रक्खी हैं ।

अगर हम २०००० बीस हजार वर्ष पहिले मनुष्यको दूसरी शकलमें मानें और इसी प्रकार तेईस लाख (नहीं नहीं चौरासी लाख) शकलोंमें बीस बीस हजार वर्षके बाद अन्तर मानें तो २३०००००×२००००=४६००००००००० छियालीस अर्ब वर्ष होतेहैं और यदि मनुष्य (चीनकी वस्तीके माफिक) को १००००० एक लाख वर्ष पूर्वका मानें और ८४००००० चौरासी लक्ष योनिके साथ गुणा करें (जो ठीक है) तो ८४०००००×१०००००=८४०००००००००० आठ खर्ब

* यह गिन्ती मुसलमान विद्वानोंने भी ठीक मानी है एक मुसलमान विद्वान् कहताहै कि 'हश्त दह हस्ता दो वालिवदीद अम् । हमचो सब्ज बारहा रोईद अम् ' अर्थात् { ७+१०=७० ; ७+२=१४ } =८४) चौरासी लक्ष प्रकारके शरीरोंको मैने देखा और अनेकोंवार बीज वृक्षन्यायमे पैदा हुआ । प्रसिद्ध खेल चौपडका भी यही अभिप्राय है । गोट मरनेपर चौरासी घरोंमें घूमकर पक्ती है अर्थात् छुटकारा पाती है ।

चालीस अर्ब वर्षका समय चाहिये परन्तु पृथिवीकी आयु (जो वेदके माफिक अबतक १९७०००००० एक अरब सतानवें करोडके करीब है) योरोपके विद्वानोंनें अबतक दश करोड ही मानी है, जिससे यह विकाशवादका सिद्धान्त गलत सिद्ध होताहै ।

यदि ये कहें कि नहीं, मनुष्यकी लिङ्क (शृङ्खला) जगत् भरके प्राणियोंके साथ नहीं है किन्तु विशेष २ प्राणियोंके साथ है और इस प्रकारकी कई श्रेणियाँ हैं।आदिमें बीज भी कई प्रकारके थे । तो हम कहेंगे कि यह नाम मात्रका ही विकाशवाद है । क्योंकि योंतो सभी लोग वृक्षके पहिले बीज मानते हैं और सब बीजोंको पृथक् पृथक् बतलाते हैं । किन्तु

विकाशवादी कहता है कि नहीं नहीं तुम विकाशवादको नहीं समझते । मनुष्यकी लिङ्कका सम्बन्ध समस्त प्राणी और वनस्पतिसे नहीं है । किन्तु खास २ प्राणियोंका ही मनुष्य विकाश है । सुनोः—

कोई प्राणी अपने आकार-को पलट नहीं सकता

- विकाशका सिद्धान्त है कि " जो प्राणी अपनी आप रक्षा नहीं कर सकता उसे सृष्टि जीवित नहीं रखती अतः संसारके सभी प्राणी भोजनोपार्जनकी धुनमें रात दिन व्यग्र रहते हैं । मौका महालसे नाना प्रकारकी चेष्टा करतेहैं । चेष्टा करते समय शरीरके जिस जिस भागपर अधिक वजन पडता है वही वही भाग बहुत समयके बाद विलक्षण प्रकारका बन जाताहै । उसकी सन्तानकी सन्तानमें दीर्घकालके बाद एक विशेष अङ्ग पैदा हो जाताहै और एक नये आकार प्रकारकी जाति बन जाताहै । इस थियरी और सृष्टि नियमके आधारपर विद्वानोंने माना है किः—

आदि सृष्टिमें पानीपर एक ऐसा जन्तु पैदा हुआ जिसे न तो प्राणी कह सकें न वनस्पति । उसने अपने पोषण करनेके लिये प्रयत्न किया । उसकी वंश वृद्धि हुई । वंशजोंने भी दैविक घटनाओंके अनुसार अपने पोषणार्थ मौका महालसे प्रयत्न करना शुरू किया । बहुत दिनके बाद उनमेंसे कुछ मछली बनगये । पानीमें बहुधा लकडी पडी रहतीहैं । जो मछलियाँ लकडीमें चढनेका अभ्यास करती रहीं वे वृक्षमें चढनेवाली गिलहरी आदि बन गईं

उधर जो किनारेपर स्थलमें अभ्यास करती रहीं वे मेंडक आदि बनकर सुवर आदि बन गईं और इसी तरह क्रम क्रम घोडा बन्दर गौरेला(बनमनुष्य) होते हुए मनुष्य बनगया" । (देखो ये पिक्चरबुक आव इवोल्यूशन पृष्ठ १९४,१९९)

पाठक ! ' जड पानीसे आरम्भमें चेतन कीडा कैसे बनगया ' यह जटिल प्रश्न न करके उपरोक्त विकाशवादका उत्तर यह है कि ' जो प्राणी जिस अङ्ग वा जिस इन्द्रियसे अधिक काम लेता है उसके उस अङ्ग वा उस इन्द्रियके पूर्व गुणोंमें कुछ वृद्धि वा ह्रास हो जाताहै यह सत्य है पर उस अङ्ग वा इन्द्रियका आकार प्रकार उलटा-सीधा टेढा-मेंढा नहीं होजाता । कोई नया अङ्ग वा इन्द्रिय फूट नहीं निकलती और न कोई अङ्गलोपही हो सकताहै । हम अपने इस आरोपकी पुष्टिमें निम्नोक्त तीन वैज्ञानिक युक्तियां देतेहैं ।

(१) किसी भी प्राणीकी इच्छासे उसके शरीरमें हड्डी पैदा नहीं हो सकती । हड्डीकी शाखा नहीं फूट सकती । दो पैरकी जगह चार पैर अथवा छे पैर नहीं हो सकते । जिनके आँख नहीं है उनके ऑख पैदा नहीं हो सकती और न हाथ पैर आँखवालोंके ये अङ्ग गायब ही हो सकते हैं । क्योंकि हम देखते हैं कि हड्डीका सम्बन्ध प्राणीके ज्ञान तन्तुओंसे नहीं है । दातमें सुई चुभाइये अथवा टूटी हुई (शरीरको छेदकर बाहर निकली हुई) हड्डीको चाकूसे काटिये, आपको बिलकुल तकलीफ न होगी । जब दात और हड्डीका सम्बन्ध आपके मन अथवा बुद्धिके साथहै ही नहीं तो दात अथवा अन्य हड्डीपर आपकी इच्छाशक्तिका कैसे असर होगा ? जब आप अपने बालोंको अपनी इच्छासे हिला नहीं सकते उन्हें खडा नहीं कर सकते तो वे आपकी इच्छासे कैसे घट बढ सकेंगे ? इसी तरह प्रयत्नसे भी कोई चीज फूट कर बाहर नहीं निकल सकती क्योंकि प्रयत्न तो इच्छाके बाद होताहै । अतः विकाशकी थियरी, जो इच्छा और प्रयत्नसे अङ्गो अर्थात् हड्डियोंकी उत्पत्ति मानती है, बिलकुल असत्य है ।

(२) भोजन प्राप्त करनेमें आँख, नाक, जिह्वा और त्वचाकी आवश्यकता हो सकती है पर भोजन प्राप्तिका सम्बन्ध शब्दके साथ कुछ भी नहीं है, तब प्राणियोंमें कर्ण इन्द्रियकी उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई ?

(३) यदि जरूरत और इच्छा होनेपर उन पशुओंके शरीरोंपर वाल उग और वढ सकतेहैं, जो वर्फानी स्थानोंमें रहते हैं तो हजारों सालसे वर्फानी स्थानोंमें कष्ट पानेवाले ग्रीनलैण्ड आदि निवासी मनुष्योंके शरीरोंपर वाल क्यों न उग निकले ? हम देखते हैं कि जिनको परमात्माने ऐसे वाल दिये हैं, उनके शरीरपर सरदी पडते ही वाल निकल आते हैं और गर्मीके मौसिममें, निकले हुए वाल कम हो जातेहैं (देखो चिल्ड्रेन मेगजीन फरवरी सन् १४) पशुओं, पक्षियोंकी इच्छासे तो छै महीनेमें वाल वढजावें पर ग्रीनलैण्डके मनुष्योंके शरीरोंपर हजारों वर्षोंमें भी वाल न उगें-यह कैसा विकाशवादका अन्धेर है ? इच्छाशक्ति तथा प्रयत्नसे जब शरीर पर वाल भी नहीं उग सकते, उगे हुए वढ भी नहीं सकते तो कान जैसी बेजरूरी इन्द्रिय और हड्डी जैसी बुद्धिसे भी सम्बन्ध न रखनेवाली वस्तु आपसे आप कैसे वन सकतीहै ? अतएव प्राणी आपही आप अपने आकार प्रकारमें फेरफार नहीं कर सकता ।

क्या मिश्रयोनिज जातिसे वश चलता है?

इसके अतिरिक्त यदि यह कहाजाय कि दो श्रेणियोंके मिश्रणसे भी तो तीसरी विलक्षण जाति उत्पन्न होजातीहै अतः सम्भव है, दो श्रेणियोंने मिल २ कर जगत्की इतनी जातियाँ करदी हों ? इसका उत्तर 'सृष्टिने आपसे आप दे दिया है। सृष्टिने जो उत्तर दिया है रहस्यपूर्ण है। माली एक पेडसे कलम लाकर और दूसरेमें लगाकर दोनोंसे विलक्षण फल तैयार कर लेताहै पर वह विलक्षण फल दूसरा वृक्ष, अथवा दूसरे फल पैदा नहीं कर सकता। यह चरित्र हम रोज वगीचोंमें आम और वेर आदिके वृक्षोंमें देखा करतेहैं । इसी प्रकार गधे और घोडीसे खच्चर नामका एक विलक्षण पशु पैदा हो जाताहै पर वह भी औलाद पदा नहीं कर सकता ! ये उदाहरण हैं, जो प्रवलतासे 'मिश्र-योनिज-जाति' का खण्डन करतेहैं। मिश्र-योनिज-जातिका ही खण्डन नहीं करते किन्तु एक सच्चा और वैज्ञानिक लेक्चर सुनातेहैं कि:—

"यदि कोई भी जाति जरा भी अपनी वश परम्पराके प्रतिकूल अपने शरीरमें कोई भी नई वनावट उत्पन्न करेगी तो उसका वंश न चलेगा"।

पर कुछ योनियाँ ऐसी भी पाई गयीहैं, जिनके मिश्रणसे वंशपरंपरा चलतीहै। पर वे जातियाँ जो हमारी दृष्टिमें दो समझ पडतीहैं, निस्सन्देह कुदरतकी दृष्टिमें एकही है, अन्यथा उन दोनोंके मिश्रणसे वंश कदापि न चलता।

हमारी दृष्टिमें--हमारी बाँधी हुई शृंखलामें--हमारी नियत कियी हुई व्यवस्थामें सरासर भूल है। हम बहुत करके बाहरी आकार प्रकारकी समता देखकर ही लिङ्ग बनातेहैं पर वह सृष्टि नियमके अनुसार नहीं होती। 'क्या घोडे और गधेकी समता चुननेमें हमने अपनी समझमें कोई गलती की है? क्या गधा बिलकुलही घोडेकी शकलका नहीं है? पर सृष्टि कहतीहै, न, गधे और घोडेसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

हम काम पडनेपर बकरी और मृगको बिलकुल भिन्न २ जाति कहदें तो ताज्जुब नहीं, पर सृष्टि दोनोंको एक समझतीहै। सुना गयाहै कि इन दोनोंके मिश्रणसे वंश परम्परा चलतीहै। हम बाज समय बिलकुल एकही जातिके प्रान्त निभेदी शरीरोंके वैषम्यको देखकर कह उठतेहैं कि यह बिलकुल कोई दूसरी जातिहै। पर सृष्टि साबित करतीहै कि नहीं, यह दूसरी जाति नहीं किन्तु एकही है। टेराडेल्फिगोके मनुष्योंको देखकर डारविन जैसा प्राणिशास्त्री कह उठा था कि 'उनको देखकर इस बातपर कठिनतासे विश्वास किया जासक्ताहै कि वे भी हम लोगोंकी तरह मनुष्य हैं,* (शिक्षा)

किन्तु वही डार्विन बन्दर और गौरिल्लाको देखकर चिल्ला उठाया कि "मनुष्य निस्सदेह इनका समीपी और इन्हींका उन्नत परिणाम है। लेकिन सृष्टिने उसके अनुमानको उसी तरह काटदिया जिस तरह घोडे और गधेके साम्य तथा बकरी और हिरणके वैषम्यवाले अनुमानको काटदिया था। मतलब यह कि जिन जातियोंसे मिश्र--योनिज वंश चल सकताहै वे भिन्न जातियाँ नहीं हैं, वे केवल टेराडेल्फिगोके मनुष्योंकी भाँति रूप बदलेहुए एकही जातिहैं और जिन जातियोंसे मिश्र योनिज वंश नहीं चलसक्ता वे

---

* इसी प्रकारकी एक जंगली जाति अमेरिकाकी अमेजन नदीके किनारे वृक्षोंपर निवास करतीहै, जिसके होंठ एक २ हाथ लम्बे होतेहैं। ये बिलकुलही मनुष्यसे विलक्षण आकार वाले हैं, किन्तु हैं मनुष्य। (सरस्वती वर्ष १० अंक ४)।

निस्संदेह विलकुल भिन्न २ जातियाँहैं। मनुष्यके संयोगसे गौरिल्ला बन्दर आदिसे लेकर घोडे गधेतक किसीमे भी गर्भ धारण नहीं होसक्ता अतः मनुष्य उस शृंखलाका नहीं है किन्तु हिरण और बकरी अथवा टेराडेल्फिगो और मनुष्य यद्यपि देखनेमें आकार प्रकारमें भिन्न है पर उनमें वंश चलताहै, इसलिये वे एकहैं। प्राचीन ऋषियोंने इस विषयपर बहुत कुछ विचार करने पर निश्चय कियाथा कि:—

"समानप्रसवात्मिका जातिः" (न्यायशास्त्र)

अर्थात् जाति वही है, जिसमें समान प्रसव हो—जिनके पारस्परिक योगसे वंश चले। वे भिन्नरूप होनेपर भी एकही जातिहैं। किन्तु आमोंकी कलमोंसे उत्पन्न हुए फलों और घोडे गधेसे उत्पन्न हुए खचरसे वंश नहीं चलता इससे वे एक जाति नहीं कहे जा सक्ते।

कलमी आममें वृक्ष और फल क्यों नहीं लगते? खचरके औलाद क्यों नहीं पैदा होती? इसका उत्तर भारतवर्षके अतिरिक्त संसारमे कोई भी देश ठीक २ नहीं देसक्ता। क्योंकर देसकेगा इस पहेलीके अन्दर तो कर्म, कर्मफल और उनका भोग तथा पुनर्जन्मका गूढ रहस्य भराहुआ है।

पुनर्जन्मकी यह प्रक्रिया है कि मनुष्यके कर्मोंके साथ साथ उसके बाह्य शरीर और अन्तर शरीरोंपर विलक्षण परिवर्त्तन होताहै।

इसे प्रायः सभी लोग जानतेहैं कि चोर और डाकुओंकी शकलें भयानक होजातीहैं, अन्तःकरण समेत आत्मा कर्मोंके कारण विलक्षण वन जाताहै और मरनेके बाद ऐसी योनिमें आकर स्थित होताहै जैसे कर्म होतेहैं * अब यदि यहाँ पृथ्वीपर आप कोई कृत्रिम, सृष्टि अथवा नियमके प्रतिकूल नई जाति बना डाले तो उसमे आनेके लिये बीज कहाँसे आयेगा? क्योंकि

---

* सृष्टिमें कर्म और उनके परिणाम मुकरर हैं क्योंकि सृष्टिके कानून नियत नियमित Complete है। अतएव जितने प्रकारके कर्म हैं उतनेही प्रकारकी योनियाँ भी मुकरर हैं। यहाँतक कि प्रत्येक योनिमें भी उत्तम,मध्यम, निकृष्ट और अधम आदि भेद विद्यमान हैं सृष्टिका कायदा है कि अमुक प्रकारके कर्मकी पराकाष्ठा पर पहुँचनेसे अमुक योनिमें जानाही पडता है। इस नियमकी पाबन्दी करनेमें नियामक गाफिल नहीं होता।

बीज तो वहाँ वही है, जो यहाँसे गया है बीजें क्या कोई दूसरी चीज है ? वह तो वही मृतक पूर्वजोंका लिङ्ग-शरीरहै । यदि ऐसा न होता तो खचरके वीर्यसे जीव क्यों न उत्पन्न होते, कलमी आममें आमके बीज क्यों न होते ? पर हों कहाँसे ! खचरने गधेके वीर्यसे निकलकर घोड़ीके गर्भमें अपना रूप दोनोंसे भिन्न एक नये प्रकारका बनाया था यही कारण हुआ कि उसके वीर्यमें जीव आकर्षित न हुए । विजातीय किस सम्बन्धसे आकर्षित करें ? यही कारण है कि कलम कियेहुए वृक्षोंके फल भी अन्य फल नहीं देते । इस उदाहरणसे विकाशवादके निम्नोक्त दोनों सिद्धान्त कि:—

१ आपही आप धीरे धीरे माता, पिताके अतिरिक्त भी कुछ गुण एकत्रित करते २ कुछ कालमें एक नये रूपकी नई जाति बन जातीहै अथवा—

२ पृथक् पृथक् दो श्रेणियोंके मिश्रणसे मिश्र योनिज जाति बन जातीहै ।

गिरगये । मिश्र योनिज जातिका सिद्धान्त तो प्रत्यक्षही खण्डित होगया किन्तु परोक्षरीतिसे यदि सूक्ष्मतया देखो तो विकाशवादका 'क्रमक्रम उन्नतिसे वंश विलक्षण हो जाताहै' यह वाद भी उड़गया, यथा—

प्रश्न—खचरके औलाद क्यों नहीं होती ?

उत्तर—मिश्र योनिज जाति होनेसे ।

प्र०—मिश्र योनिज जाति होनेसे औलाद क्यों नहीं होती ?

उ०—इसलिये कि उसने अपनी वंश परम्परा अर्थात् बाप दादेके प्रतिकूल अपने आकार प्रकारमें एक विलक्षण उन्नति की.

प्र०—मिश्र योनिज जातियोंमें भी तो वंश परम्परा चलतीहै ।

उ०—वे जातियाँ दो नहीं किन्तु एकही हैं ।

प्र०—उनके आकार प्रकार तो भिन्न २ हैं, और उनसे बच्चा भी पैदा होताहै ?

---

१ जो योनियाँ पहिले पृथ्वीपर थीं पर अब नष्ट होगई हैं । उनके लिङ्ग शरीर दूसरी सृष्टिमें उसी रूपसे पैदा होंगे ।

२ यह नई थियरी नहीं है चाणक्यनीतिमें लिखा है कि " यमस्य [illegible] गर्भमश्वतरी यथा " अर्थात् ' जैसे खचरी गर्भवती होनेपर मर जाती है ।

उ०–उनके आकार प्रकार हमारी दृष्टिमें उसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार टेराडेल्फिगोके मनुष्य, किन्तु सृष्टिकी दृष्टिमें वे समान प्रसवा एकही जातिके दो भेद हैं।

जब यह सिद्ध होगया कि अपनी वंश परम्पराके प्रतिकूल जरा भी आकार प्रकारमें परिवर्त्तन होनेसे वंश नहीं चलता, तब विकाशवादमें–क्रमक्रम उन्नति-वाले धोखेके विश्वासमें कुछ भी दम बाकी न रहा।

यहां तक यह दिखला दियागया कि "गणितकी रीतिसे क्रमक्रम उन्नति सृष्टिकी आदिसे आजतक इतने दिनोंमें नहीं हो सकती। कोई भी प्राणी अपनी हड्डियोंमें काबू न रखनेके कारण अपना आकार प्रकार स्वयं बदल नहीं सकता और न मिश्र–योनि–सम्बन्धसे वंश चल सकताहै"। अब आगे बतलातेहैं कि मनुष्य बन्दर आदि पशु विभागका प्राणी नहीं है।

बन्दर और गोरेला (वनमनुष्य) की बनावटमें उतना अन्तर नहीं है जितना गोरेला और मनुष्यमें अन्तर है और यह अन्तर ऐसा है, जिसको विज्ञान कभी भी एक न होने देगा। सुनो!

यामनुष्य श्रेणीका है

संसारमें मनुष्यको छोड़कर जितने प्राणीहैं किसीके भी बालोंमें रंग और बनावटका वैसा परिवर्त्तन नहीं पाया जाता जैसा मनुष्योंके बालोंमें। जो गाय सफेद होतीहै, आजीवन सफेदही रहतीहै। जो घोडा लाल होताहै, आजीवन लाल रहताहै। जो बन्दर भूरा होताहै, भूराही रहताहै। और जो वनमनुष्य जिस रंगका होताहै, आजीवन उसी रंगका रहताहै। पर मनुष्यके बालोंका रंग चार बार पलटताहै। पैदा होनेपर भूरे, फिर काले, तब सफेद और अन्तमे पिंगल हो जातेहैं। मनुष्यका बालोंके साथ क्या सम्बन्ध है? इस बातका उत्तर देना भारतवर्षके अतिरिक्त और किसी देशके पण्डितका काम नहीं है। वेदने एक जगह लिखा है कि:–

'बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशमकल्पयत्' अथर्व० १४-१। ५५।

अर्थात् 'बुद्धितत्त्वने पहिले ही सूर्यके द्वारा शिरमें बालोंको पैदा किया' मनुष्यका शिर आकाशकी ओर है, आकाश जिसको द्यौ, अग्नि, बृहस्पति आदि कहतेहैं बुद्धि तत्त्वका प्रकाशक और सूर्यकिरणोंके द्वारा बुद्धिसत्त्वको

मनुष्यके शिरमें पहुचाताहै । अब निर्णय होगयाहै कि ईथर (आकाश) ही सूर्यको भी प्रकाश देताहै और ईथरही विद्युतको भी पैदा करताहै । विद्युतसे और केशोंसे कितना सम्बन्ध है वह कहनेकी जुरूरत नहीं है। केशोंपर विद्युतका असर बहुत ही शीघ्र पडताहै । केशोंमें एक टंडी रगडकर कागजके टुकडेके पास लेजावो कागज खिचकर डंडेमें आजायगा । जबसे बच्चा ज्ञान प्राप्त करने लगताहै तभीसे बाल श्याम रंगके होजातेहैं । श्याम रंगपर सूर्यका प्रकाश कितनी जल्दी पडताहै यह भी कहनेकी जरूरत नहीं है * इस विवरणसे समझ सकतेहो कि जिनके बालोंका रंग नहीं बदलता ऐसे बन्दर और बनमानस कभी मनुष्यके बुजुर्ग हो सकतेहैं ? कभी नहीं । ×

जिस प्रकार बालोंकी विचित्रता आपने पढी उसी प्रकारकी विचित्रता मनुष्यमें एक और है । वह यह कि मनुष्य पानीमें विना सिखलाये हुए नहीं तैर सकता । एक चींटीसे लेकर पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग यहाँतक कि बन्दर भगवान भी पानीमें डालते ही तुरन्त तैरने लगतेहैं, एक क्षणभर भी यह नाविक-ज्ञान किन्तु महाज्ञान सीखनेके लिये उनको किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती । किन्तु मनुष्य महाराजको तैरना विना सिखाये नहीं आता, यही कारण है कि हरसाल अनेक मनुष्य जलमें डूबकर मर जातेहैं । तैरनाही क्या, मनुष्यको विना सिखलाये कुछ भी नहीं आता । पर अन्य प्राणियोंको उनके निर्वाहका सभी ज्ञान विना किसी गुरुके वश परम्परानुसार होताचला आताहै । किन्तु हाँ, मनुष्य स्वप्नमें उडता और तैरता अवश्य है। स्थलके प्राणी जागते हुये तैर लेतेहैं और मनुष्य स्वप्नमें उड लेताहै,

---

* साइंसके जाननेवाले सब जानते हैं कि रंगोंके अभावका नाम श्याम और सब रंगोंका एकत्र होना सफेद है । जब कोई रंग नहीं रहता तब रात होतीहै और जब सब रंग होतेहैं तो उसे दिन कहतेहैं—

खाली स्थानमें जिस प्रकार पानी और वायु घुसती है उसी प्रकार श्यामतामें प्रकाश शीघ्रतासे घुसताहै । इस थियरीके माफिक मायर्ना सन्तमें शिखा बन्धन भी खाली हुज्जत नहीं है ।

× मनुष्यके शरीरभरके केशोंका रंग बदलता है, क्योंकि उसके शरीरभरके ज्ञानतन्तु अधिक बुद्धिमानीसे काम करतेहैं ।

यद्यपि इस लोकमें इन दोनों विद्याओंकी शिक्षा दोनोंमेंसे किसीको नहीं दीगई। क्या कृपा कर योरोपके विद्वान इसका कारण कह सकेंगे? कभी नहीं। योरोप क्या सारे संसारके लोग इन बातोंका उत्तर नहीं दे सकते। पर भारत! वह तो ऐसे प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिए ही राजपाट व्यापार कलाकौशल छोडकर सन्यासी बना बैठाहै।

लीजिये उत्तर सुनिये। यह कौतुक पुनर्जन्मका ज्वलन्त दृष्टान्त प्रमाण और प्रत्यक्ष अनुभव है। अनेकों जन्म जन्मान्तरोंमें प्राणियोंने नाना प्रकारकी योनियोंमें प्रवेश कियाहै, समय पडनेपर वही संस्कार जाग्रत हो जातेहैं और प्राणी जलमें पडते ही, मनुष्य सोते समय संकटमें पडते ही तैरने और उडने लगताहै। किन्तु मनुष्य अपनी इस देहके साथ बिना सिखाये कुछ भी नहीं कर सकता।

अब इस घटनाको विकाशवादके साथ मिलाकर हम प्रश्न करतेहैं कि 'मनुष्यके पिता बन्दरदेव तो तैरना जाने, पर यह विकाशको प्राप्त हुआ उनका पुत्र 'मनुष्य' जो अधिक उन्नत समझा जाताहै तैरना न जाने। इसका जवाब क्या है[१]' ?

इसी प्रकार वृक्षोंकी खुराक प्राणनाशक वायु और प्राणियोंकी खुराक प्राणप्रद वायु है, वृक्ष प्राणप्रद वायु देतेहैं और मनुष्य प्राणनाशक वायु देतेहैं। वनस्पति और प्राणियोंसे भी कोई जीवन सम्बन्धी अथवा सामाजिक वा शृंखला सम्बन्धी मेल नहीं मिलता। तब विकाशवादकी क्रम २ उन्नति सिवा बच्चोंके खेलके और क्या कही जासकती है ?

इन तीन दृष्टान्तोंसे दिखला दियागया कि मनुष्य पशुओंसे और प्राणिवर्ग वनस्पतियोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। आगे चलकर दिखलातेहैं कि योरोपके पण्डितोंको अँधेरी रातमें क्यों ठोकर खानी पडी है।

१ यह प्रबल प्रमाण है कि मनुष्यको आदि सृष्टिमें ईश्वर की ओरसे ज्ञान और भाषा दी गई अन्यथा वह बिना गुरुके कुछ भी न सीख सकता।

२ इसीप्रकार प्राय सभी पशुपक्षी बिना सिखाये हुये घोंसले बनाना, दमाकरना तैरना आदि सभी अपनी जरूरतके काम कर सकते हैं केवल एक मनुष्यही है जो शिक्षाका भिक्षुक है। इसी लिये कहा जाता है कि 'क्रमक्रम उन्नति' का सिद्धान्त झूठा है।

योरोपके विद्वानोंको प्राणियों और वनस्पतियोंकी सन्धियोंको देखकर जो धोखा हुआहै इस जगह उसका थोडासा वर्णन करके उसके समाधानके साथ पहिले प्रश्नके उत्तरको समाप्त करेंगे ।

योरोपीयविद्वानोंको धोखेमें डालनेवाली बातें

जिस प्रकार मनुष्य और वनमनुष्यको देखकर दोनोंके एक होनेका सन्देह होने लगताहै, उसी प्रकार चमगादड (Bat) को देखकर पशु, पक्षियोंकी शृंखलामें विचार होने लगताहै और मछली तथा पक्षी, सूस और भैंसको देखकर भी सन्देह होने लगताहै । इसी प्रकार नागवेल और सर्पके मिलान तथा अन्य सहस्रों वनस्पति और कीटोंको देखकर निर्णयही नहीं होता कि इसे कीट कहें या वनस्पति ? ऐसी दशामें एकवार यह ध्यान आये विना नहीं रहसक्ता कि क्या यह एक रूपताकी ही बहुरूपताहै और वास्तवमें एक दूसरेसे उतनाही सम्बन्ध है, जितना कि बापका बेटेसे । परन्तु जरा गहरी नजरसे देखनेपर और पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विचार करनेसे सारी उलझन सुलझ जातीहै और मामिला बातकी बातमें साफ होजाताहै ।

आप सारी चेतनसृष्टिका एक सृष्टिनियमके द्वारा विभाग करें तो उनकी शारीरिक रचनाके माफिक तीन महाभाग होंगे । पहिले खडे शरीरवाले अर्थात् आकाशकी ओर शिर वाले 'मनुष्य' दूसरे आडे शरीरवाले, अर्थात् उत्तर दक्षिणकी ओर शिरवाले 'पशु' जिनमें जलस्थल और वायु तथा वन चाले भी हैं । तीसरे नीचेकी ओर शिरवाले, वृक्ष । यद्यपि यह तीनों प्रकारके

---

१ नागवेल यह वनस्पति है, जो सुवर्णके तारोंकी भाँति वृक्षोंमें लिपटी रहती है । उसकी जडको भूमिकी दरकार नहीं होती । यह दूसरे वृक्षके ही ऊपर सर्पकी भाँति रेंगती रहतीहै । उसीको खाकर खुद बढती और सन्तान बढाती है, टूटजानेपर टूटा हुआ टुकडा अलग एक लता बनकर अपना विस्तार करने लगता है । यद्यपि यह वनस्पति सर्पादि जन्तुओंसे बहुत कुछ मिलती है इसे नागवेल कहते भी हैं पर वनस्पतिके गुण आधेसे अधिक हैं इस लिये इसे वनस्पतिही कहते हैं ।

२ बहुतसे कीटाणु और वनस्पति पुद्गल एकही प्रकारके होते हैं । किसी प्रकार भी निश्चय नहीं होता कि इन्हें वनस्पति श्रेणीमें रक्खें या कृमि कीट जन्तुओंकी श्रेणीमें ।

३ वनमनुष्य और बन्दर मनुष्यकी भाँति छाती तानकर खडे नहीं होसक्ते, वे जरा झुके हुए होते हैं ।

शरीरोंका वर्णन पूर्णरीतिसे हम यहाँ नहीं करना चाहते कि क्यों ये तीन प्रकारकी बनावटें होती हैं ? पर इतना कहे देते हैं कि ज्ञानका दुरुपयोग करनेसे शिर द्यौ (आकाश) की ओरसे हट जाता है और पशु होजाना पड़ता है तथा ज्ञान और कर्म दोनोंके दुरुपयोगसे शिर और कर्मेन्द्रिय (हाथ पैर) भी छीन ली जाती हैं और वृक्ष बनाकर उलटा (शिरनीचे) करके जमीनमें गाड़ दिया जाता है। बस इन्हीं तीनों श्रेणियोंमें जानेके लिये जो दरवाजे रक्खे गये हैं अर्थात् ऊपर कही हुई बन्दर चिमगीदड आदि जो सन्धि–योनियाँ हैं वही विकासवादके सिद्धान्तियोंको हैरान कर रही हैं अतएव आओ, हम इसका कारण समझावें। आप गौर करके देखें तो सन्धियोनियाँ भी दो प्रकारकी पावेंगे। एक उत्तम, दूसरी निकृष्ट। जैसे बन्दर और बनमनुष्य, नागबेल और मानेर तथा 'यमोवा' आदि। मनुष्य योनिसे जब प्राणी नीच योनिमें जाता

---

१ यदि पूरा हाल देखना हो तो "वैदिक सम्पत्ति" नामका मेरा बनाया हुआ ग्रंथ देखना।

२ बनमनुष्य बन्दर चमगीदड मछली सर्प पनडुब्बी बतक नागबेल मानेर यमोवा आदि सन्धियोनियाँ हैं।

३ ये कीटाणु अबतक सन्दिग्ध दशामें हैं। कोई इन्हें कीट कहता है, कोई वनस्पति। पर रुकानेपर इनके दोनों खण्डोंका जीवित रहना फैसला करता है कि ये कीट नहीं किन्तु वनस्पति हैं। क्योंकि वनस्पतिमें यह गुण पाया जाता है कि वह कटकर दूसरी जगह लगाई जाय और जीवित रहे, परन्तु कोई जन्तु कटकर जीता नहीं रहता, इस व्यापक नियमके माफिक 'मानेर' 'यमोवा' आदि कीटाणु नहीं हैं, वे निस्सन्देह वनस्पतिके अन्तर्गत हैं। वृक्षभी उसी जगहके कटनेपर जीता रहता है, जहाँ उसका निजका जीवात्मा न हो। जैसे अंगुली या पैर कटनेपर मनुष्य जीता रहता है। इससे मालूम होता है कि मनुष्यके जीवका निवास मात्र अंगुलीमें ही नहीं है। पर मनुष्यकी कटी हुई अंगुली जीवित नहीं रहती और वृक्षोंका कटा हुआ टुकडा जीवित रहता है इससे ज्ञात होता है कि उस टुकडेमें उस कटे हुए स्थानमें उस वृक्षका जीव नहीं, बल्कि अन्य वृक्ष पैदा करनेवाला बीज मौजूद है। वृक्षका बीज जिस स्थानमें नहीं होता उस स्थानको काटकर लगानेसे वृक्ष नहीं पैदा होता आलूकी डालीसे वृक्ष न होगा पर गुलाबकी डालीही बीजका काम देती है। मानों आलूकी जडमें और गुलाबकी डालीमें ही बीज है–यही कारण है कि आलूकी डालीमें नहीं किन्तु जडमें काटकर लगानेसे बीज जाग्रत होजाता है और उस कटे हुए टुकडेको अपनी खाद बनाकर बढ जाता है। इतना होते हुए भी प्रत्येक जन्तु, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वनस्पती अपने शरीरके किसी न किसी विशेष स्थानके आघातसे मर जाता है। वह अपने मर–

है तो मानो उस समय उसमें अधिक पशुता होतीहै इसलिये उसकी सन्धि-योनि भी अधिक पशुतासे भरीहुई 'बन्दर' होनी चाहिये । पर पशुयोनिसे जब मनुष्य योनिमें आताहै तो उसमें अधिक सात्त्विकता होतीहै । इसलिये वैसे मौकेके लिये वनमानस अर्थात् गोरिला आदिहै । इसी भाँति कोई पशु जब वृक्ष योनिमें जाना चाहताहै तो वह नागबेल आदिके द्वारा जाताहै, क्योंकि नागबेलमें वनस्पतिपना अधिकहै । पर यदि कोई जीव वृक्षयोनिसे पशुयोनिमें आनेवालाहै तो वह मानेर यमोया आदिके द्वारा आयेगा जिनमें कीटत्व अर्थात् प्राणित्व अधिकहै । इसी प्रकारसे प्रायः सब जातियों—सब प्राणियोंमें अच्छे और बुरे दो भेद दिखाई पडरहेहैं, और सूचित कररहेहैं कि एक नीचे जारहाहै, दूसरा ऊँचे आरहाहै । पर कभी भी ऐसा नहीं होसकता कि कुछ बन्दरोंकी औलाद स्वयं मनुष्य बनजावे और करोडों बन्दर अबतक बन्दरहीं बनेरहें । विज्ञान बतलाताहै कि मैटर अर्थात् प्रकृतिमें एकही साथ मोशन अर्थात् गति दी गईहै और ठीक भी है यदि मोशन देनेवाली शक्ति 'फोर्स' सर्वत्र है, व्यापक है तो उसकी की हुई गति भी सर्वत्र ही हुई होगी और उस गतिसे बननेवाले कार्य भी सब एक साथही बनने शुरू हुए होंगे । तब कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि थोडेसे बन्दर आदमी बनगये और बाकी सब बन्दर ही पडेहैं । क्या उनको अबतक कुछ भी आकार प्रकारसे ह्रास अथवा विकाश करनेकी जुरूरत नहीं हुई । हमें अफसोस है कि वैज्ञानिकोंका नाम बदनाम करनेवाले वैज्ञानिकोंको ऐसी २ मोटी बातें भी नहीं सूझीं । जो हो:—

हमारे इस योनियों तथा सन्धियोनियों और पुनर्जन्मके बारीक विवरणसे

—स्थानमें चोट लगनेसे सूख जाता है । इससे ज्ञात होता है कि उसका निजका जीव भी अलग है । कोई डाल कटनेपर, कोई जड कटने पर, कोई पत्ता तोडनेपर मर जाता है । पर कोई पत्ते तोडनेपर, डाल कटने पर, जड टूटने पर, नहीं भी मरता । जिन स्थानोंके आघातसे नहीं मरता वे उसके बीजस्थान हैं । जीवनस्थान नहीं और जिनके आघातसे मरता है वे बीजस्थान नहीं, बल्कि जीवनस्थान है । क्या वीर्य (बीज) के निकलने पर कोई मरता है ? क्या बीज स्वयं वृक्ष नहीं बनजाता ? जब सृष्टिमें हम एक ऐसा व्यापक सार्वभौम नियम पाते हैं तो क्यों न मानेर यमोयाको इस मानलें । अन्यथा आत्माके कटनेका दोष आवेगा जो 'नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि, के अनुसार असत्य है ।

यह बात जुरूर प्रकाशित होगई होगी कि मनुष्य किसी दूसरी योनिका विकार नहीहै। वह स्वय मौरूसी (पैतृक सपत्ति) तौरसे मनुष्यका ही पुत्र है । पर यहाँ यह शका जुरूर होगी कि "मनुष्य-शरीरसे पशुयोनिमें जानेके लिये उसके लिङ्ग शरीरको बन्दरकी योनिमें जाना पड़ताहै । इधर ऊपर कहा गयाहै कि लिङ्ग शरीरोंको वही खींच सकताहै,—जिसका जिससे समान प्रकारका सम्बन्धहै । यदि मनुष्यके लिङ्ग शरीरको बन्दर-खींच सकता है तो निश्चयही बन्दरका मनुष्यके साथ मिश्र योनिज जातिकासा-रिश्त दारीकासा सम्बन्ध होगा" किन्तु पाठक! इसका उत्तर हमने पहिलेही देदिया है, आओ यहा फिर दोहरा दें । मनुष्यके जीतेही जी उसके कर्मानुसार बाह्य आकृतिसे लेकर लिङ्ग शरीर पर्यन्त परिवर्त्तन होजाताहै । जब मनुष्य पशुयोनिमें जानेवाले कर्म करताहै तो जीतेही जी उसका लिङ्ग शरीर बन्दरकी शकलका होजाताहै जिसको बन्दर आसानीसे खींच लेताहै । बन्दर,बदरके ही रूपको खींचताहै मनुष्यके रूपको नहीं । तात्पर्य यह कि प्राणियोंकी सन्धियोमें जो एक रूपताहै वह मरनेके बाद पुनर्जन्मका मार्ग सरल करनेके लिये है नकि इसी जन्ममें मिश्रयोनिज वश स्थापन करनेके लिये । अतः आशाहै कि अबसे सन्धियोनियोंको देखकर कोई विद्वान भ्रममें न पड़ेंगे ।

विकाशवादवालोंके दिलोंपर यह शका भी होती होगी कि अकस्मात् आदि सृष्टिमें मनुष्यके जैसे अनेक प्राणी और मनुष्यादि शरीरवाले सृष्टिकी उत्पत्ति होनेपर शङ्का आदिमे अनायास अपने २ रूपमे निकल पड़े होंगे ? हम कहतेहैं इसमे घबरानेकी बात नहीं है । सावधान होकर सृष्टिको देखो, वह आप जवाब देदेगी । देखो बरसातमे वीरबहूटी, केंचुऐ मेढक आदि कैसे

---

१ बन्दर कर्मयोनि नहीं है इसलिये उसके भीतर रहा हुआ जीव अधिकमलिन होकर अपने लिंग शरीरके रूपसे नीचे गिरता चला जाता है ।

२ केंचुए कभी कभी डेढ दो फुटके भी देखे गये हैं । ये जमीनपर ११-१२ दिनमें तैयार होते हैं । पहिले जमीन ऊंची होती है १ गोल होती है २ कठिन होती है ३ रग बदलती है ४ चमकतीहै ५ जमीनसे लगाव छूट जाता है ६ वृद्धि होती है ७ रग बदलता है ८ वृद्धि होती है ९ चैतन्यता होती है १० गति होतीहै ११ रेंगने लगतेहैं १२ ।

उसी क्रममें पैदा हो पड़तेहैं जिसमें वे सैकड़ों वर्ष पूर्वसे हरसाल बरसातमें पैदा होते थे । उनको क्रमक्रम विकाश¹की जरूरत क्यों नहीं होती? मेंढक तो ऐसा विचित्र जन्तु है और अपने जन्मका ऐसा सुन्दर नाटक दिखलाताहै कि लोग दंग रहजातेहैं । किसी मेंढकका चूर्ण बनाकर और बारीक कपड़ेमें छानकर शीशीमें बन्द करलीजिये । बरसातमें उस चूर्णको पानी बरसते समय जमीनपर डालदीजिये तुरन्त ही छोटे छोटे मेंढक कूदने लगेंगे । इनको क्रमक्रम उन्नतिकी क्यों दरकार नहीं होती? आज जब सृष्टिमें इतने दिन होजानेपर भी इतना बल मौजूद है कि वह हरसाल बरसातमें एक २ फुट और डेढ़डेढ़ फुटके कीड़े केंचुये बिना माता पिताके पैदा कर सकतीहै तो क्या अर्बों वर्ष पूर्व जब सृष्टिमें पूर्ण बल मौजूद था, इस पाँच फीट लम्बे कीड़े (मनुष्य) के उत्पन्न करनेमें असमर्थ कही जा सकतीहै? कभी नहीं । अतः यह निश्चय है—निर्विवाद है—निःसंशय है कि आदिसृष्टिमें मनुष्य इसी प्रकारका हुआ, जिस प्रकारका अब है । और होना भी तो चाहिये था ।

क्योंकि पूर्व सृष्टिमें जिनको मनुष्य शरीरके सुख दुःख भोगनेको बाकी रहगये थे उन्हें मनुष्य बनाना ही तो न्याय था क्योंकि यदि कोई मनुष्य दिन समाप्त हो जानेपर रात्रि आ जानेके कारण सोजाय तो क्या दूसरे दिन प्रातःकाल उसे मनुष्यही रूपमें न जागना चाहिये? अवश्य मनुष्यही रूपमें जागना चाहिये । बस ठीक इसी भाँति आदि सृष्टिमें भी कर्मानुसार अमैथुनी सृष्टिद्वारा प्रथम मनुष्योंकी सृष्टि हुई । अब हम कुछ योरोपीय और भारत देशीय विद्वानोंके भी प्रमाण देतेहैं:—

(क) प्रोफेसर मेक्समूलर लिखतेहैं कि "हमें इस बातके चिन्तन करनेका

योरोपीयविद्वा- अधिकार है कि करोड़ों मनुष्योंके होजानेके पहिले आदिमें थो-
नोंकी साक्षी ड़ही मनुष्य थे । आजकल हमें बतलाया जाताहै कि यह कभी

¹ विकाशवादका यह भी सिद्धान्त गलत है कि सृष्टि आपसे आप जीने योग्य प्राणियोंका चुनाव करती है यह सिर्फ व्यक्तिगत हो सकता है, जातिगत नहीं । सम्भव है कोई व्यक्ति निर्बल होनेके कारण मर सकता है पर कोई जातिकी जाति निर्बल होनेके कारण मर नहीं सकती, वह अपने समयपर मरती है और फिर अपने समयपर पैदा होती है उसकी अवधिही उतनी है ।

नहीं होसकता कि पहिले पहिल एकही मनुष्य उत्पन्न हुआ हो । एक समय था जब कि थोडेही आदिपुरुष और थोडीही आदिस्त्रियां उत्पन्न हुईथीं'' (देखो चिप्स फ्राम एजर्मनवर्कशाप जिल्द १ पृष्ठ २३७ क्लासी फिकेशन आफमेन काइंड) ।

(ख) न्यायमूर्ति-मद्रास हाइकोर्टके भूतपूर्व-जज-टी.एल. स्ट्रेंज महोदयने तो अपनी पुस्तकमें स्वीकार-कियाहै-कि ''आदिसृष्टि अमैथुनी होतीहै और इस अमैथुनी सृष्टिमें उत्तम और सुडौल शरीर बनतेहैं'' ।

संसारके निम्नलिखित और प्रचलित सम्वतोंसे साबित होताहै कि मनुष्य जगतभरकी साक्षी आरम्भ सृष्टिसे ही इस आकार प्रकारका है—

आर्य सम्वत्	सृष्टिकी आदिसे	१९७२९४००१४
चीनी सम्वत्	चीनके प्रथम राजासे	९६००२४१३
खताई सम्वत्	खताके प्रथम आबाद करनेवालेसे	८८८४०२८६
पारसी सम्वत्	ईरानके प्रथम पादशाहसे	१८९८८३
कल्डियासम्वत्	पहिले बारिससे	१९१९१३
मिश्री सम्वत्	मैनसबादशाहसे	२८९६७
इबरानीसम्वत्	आदमसे	६९१७
कलियुगसम्वत्	राजायुधिष्ठिरसे	५०१३
मूसाई सम्वत्	हजरतमूसासे	३४८६
ईसाई सम्वत्	हजरत ईसासे	१९१३

प्राचीन ऋषियोंका सिद्धान्त 'तत्र शरीर द्विविध योनिजमयोनिजञ्च, वैशेषिक ४।२।६

अर्थात् दो प्रकारके शरीर होतेहैं । योनिज और अयोनिज, जिनको हम मैथुनी और अमैथुनी सृष्टि कहतेहैं। उपरोक्त सूत्रकी व्याख्या गौतमजीने प्रशस्तपादमें इस प्रकार की है:—

* दी डेवलेपमेंट आव क्रियेशन आनदी अर्थ पृष्ट १७

"तत्रायोनिजमनपेक्षित शुक्रशोणित देवर्षीणां शरीर धर्मविशेषसहितेभ्यो-ऽणुभ्यो जायते"

इन वचनोंमें अमैथुनी सृष्टिका यह निर्वचन कियाहै कि अयोनिज शरीर रजवीर्यके बिनाही होतेहैं, यही बात पुरुषसूक्तके इस वचनमें स्पष्ट होतीहै कि —

'तेन देवा अयजन्तसाध्या ऋषयश्च ये'

अर्थात् आदिमें देव साध्य और ऋषि परमात्मासे ही हुए। यहातक हमने अपनी क्षुद्र बुद्धिके परिमाणसे सृष्टि नियमों और विज्ञानके गूढ रहस्यों, प्राणी धर्मशास्त्र और वनस्पतिशास्त्रके धर्मोके साथसाथ योरोपीय और भारतीय मान्य पण्डितोंके अनुमोदन समर्थन तथा संसारके प्रचलित सम्मतों (रोजनामचोंके) साथ साबित किया कि आदिसृष्टिमें मनुष्यही पैदा हुआ था। मनुष्यका पिता मनुष्यही था। साथही साथ यह भी दिखलाया कि विकाश वाद या डारविन थियरीके मतानुसार सृष्टि शृंखला सिद्ध नहीं होती। आशाहै कि विचारशील पुरुष आगे अनुसंधान करनेकी सुविधा प्राप्त करेंगे।

दूसरे प्रश्नका उत्तर ।

नदीके सूख जानेपर जिस प्रकार रेतमें कोई वृक्ष आपही आप नहीं उगता और न समुद्रमें भाठा हो जानेपर वालूसे दरख्त उगता हुआ देखा गया है। इसी प्रकार हम सृष्टिमें बडे गौरसे देखतेहैं कि जब कोई नई भूमि समुद्रके पेटसे बाहर निकलतीहै और रेतके मैदानोंकी भांति स्थल रूपमें परिणत होतीहै तो उसमें तबतक कोई पदार्थ पैदा नहीं होता, जबतक रेत बारीक होकर कुछ लसदार (मिट्टी) न होजाय। लसदार हो जानेपर भी बीज आपही आप उसमेंसे निकल नहीं आता किंतु अनेक कारणोंके द्वारा प्रेरित होकर—आँधी तूफान पशु, मक्खी, मच्छर आदिसे—प्रभावित होकर वहाँ पहुचताहै। जिन लोगोंका ख्याल शायद यह हो कि कुछ दिनके बाद उस जड और निर्जीव रेतसे ही वृक्षोंके अङ्कुर निकलने लगते होंगे, उनका वैसाही अनुमान है जैसा किसीने चक्कीसे आटा गिरता देखकर चक्कीके भीतर गेहूँके खेतोंका अनुमान किया था।

आदिसृष्टि एकही स्थानमें हुई।

अतएव यह घटना हमें बतला रहीहै कि:—

बीज आपही आप उग नहीं निकलता किन्तु बीज तलाश करके बड़े यत्नसे किसी अनुकूल स्थानमें बोया जाताहै। तब पौधे तैयार होनेपर और अन्य स्थानोंमें लगाये जातेहैं। यही क्रम हम रोज बगीचोंमें देखतेहैं। माली पहिले एक क्यारीमें बीज तैयार करताहै,फिर वहासे पौधे लेकर,सारीफुलवाड़ीमें लगाता तथा काम पड़नेपर दूरदेशको भी भेजता है। कहनेका मतलब यह कि बीज सर्वत्र पैदा नहीं होता, वह एकही स्थानसे सर्वत्र फैलताहै। अतः इस बीज क्षेत्रन्यायसे मनुष्य भी पहिले किसी एकही स्थानमें पैदा हुआ और फिर ससारभरमें फैला।

मालीको जिस प्रकार बीज बोनेके लिये दो बातें ध्यानमें रखनी पड़तीहैं, उसी प्रकार मनुष्यके पैदा करनेमें परमात्माको भी दो बातें ध्यानमें रखनी पड़ी होंगी।

माली उसी स्थानमें बीज बोताहै जहाँका जल वायु उस पौधेके अनुकूल हो और उसका खाद्य बहुत मिलसके दूसरे आंधी ओले आदि बाहरी आफतोंसे भी पौधेकी रक्षा होसके। इसीतरह मनुष्य भी ऐसे ही स्थानमें पैदा किया गया होगा जहाँका जल वायु उसके अनुकूल हो और उसका खाद्य उसे मिलसके तथा आँधी, तूफान, जल-प्लावन, अग्नि-प्रपात, भूकम्प और अनेक आरंभिक दुर्घटनाओंसे* उसकी रक्षा होसके अतएव यदि हम मनुष्यके मिजाज और उसके असली आहारको जानलें और किसी ऐसे स्थानका पता लगालें जहाँ आँधी, तूफान, जल प्लावन, अग्नि-प्रपात, भूकम्प और अनेक आरंभिक दुर्घटना न हो सकतीहों और वह स्थान मनुष्यके मिजाजके अनुकूल और उसके खाद्य उत्पन्न करनेके भी योग्य हो तो निस्सन्देह वही स्थान मनुष्यकी आदि सृष्टिके योग्य होगा।मनुष्यके ही योग्य नहीं किन्तु पशु,पक्षी और वनस्पती आदि सभी प्राणियोंकी आदि सृष्टिके योग्य होगा। क्योंकि ससारमें ऋतुएं चाहे जितनी हों पर सरदी और गर्मी ये दो मौसिमें प्रधान हैं, यही कारणहै कि पृथिवीभरपर दोही प्रकारके सर्द और गर्म प्रदेश पाये जातेहैं और दोनोंमें

* आरम्भमें ऐसी दुर्घटना बहुत होती हैं।

प्राणियोंकी नस्तियां भी पाई जातीहै । यहांतक कि मनुष्य पशु पक्षी और वनस्पति सभी पाये जातेहैं किन्तु मनुष्यको छोडकर सरद और गर्म देशोंमें रहनेवाले पशु पक्षियोंके शरीरोंपर बाल अधिक वा कम होतेहैं. अर्थात् सर्द देशवालोंके बाल बहुत और गर्म देशवालोंके कम होतेहैं ।

ग्रीनलैण्ड आदि शीतल देशोंमें पशु पक्षी नहीं रहते किन्तु मनुष्य और जलजन्तु पाये जातेहैं, तथापि मनुष्यके शरीरपर बाल नहीं हैं । इससे यह बात स्पष्ट होगई कि केवल सरद देशोंमें रहने मात्रसे ही बडे २ बाल उगने नही लगते बल्कि जिन जन्तुओंको बाल दिये गयेहैं, उनमें ही हैं और जिनको नहीं दिये गये उनमें नहीं है । परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि जो बालवाले प्राणीहैं निस्सन्देह ठंढे देशोंके लिये बनाये गयेहैं और जो विना बालवालेहैं वे गर्म देशोंके लिये पैदा कियेगयेहैं । किन्तु स्मरण रहे कि यहा ठंढे देशसे अभिप्राय ग्रीनलैंड आदि नहींहै जहा पशु और वृक्ष होतेही नहीं किन्तु मातदिल ठंढे देशसे अभिप्राय है ।

हिमालयके भेडे (मेष) बकरे गाय घोडे और अन्य जन्तुओंके बालोंसे पाया जाता है कि ये उसी देशके अनुकूल हैं । पर मनुष्यके शरीरपर वैसे बालोंके न होनेसे अर्थात् ग्रीनलैण्ड आदि देशोंमें न जाने कितने दीर्घकालसे (जहा वनस्पति तक नहीहै केवल मछली खाकर बर्फकी गुफाओंमें रहना पडताहै) शीतके कारण शरीर ठिगना होजानेपर भी उसके शरीरमें बालोंके न उगनेसे प्रतीत होताहै कि मनुष्य इतने ठण्ढे देशोंमें रहनेके लिये ससारमें नहीं पैदा कियागया वह किसी विशेष २ स्थानमें ही रहने योग्य है । जब मनुष्य पृथ्वीके अमुक२ स्थानमें ही रह सकताहै तो यह कल्पना निकाल देने योग्यहै कि मनुष्य धरती भरमें सर्वत्र पैदा हो सकताहै ।

अब यह बात निर्विवाद होगयीहै कि "मनुष्यका प्रधान खाद्य दूध और फलहै" दूध पशुओंसे और फल वृक्षोंसे पैदा होतेहैं । इससे पाया जाताहै कि मनुष्यके पहिले वृक्ष और पशु होचुकेथे तथा मनुष्य ऐसे मातदिल देशोंमें रह सकताहै जहा पशु रह सकतेहों और वनस्पति उग सकती हो । पहाडोंके सबसे ऊंचे बर्फानी स्थानों और ग्रीनलैण्ड आदि देशोंमें वनस्पति नहीं उग सकती

इसीलिये वहां पशुपक्षी भी नहीं रहते, इससे ज्ञात होताहै कि वनस्पति और पशुपक्षी भी मनुष्यकी भाँति किसी मातदिल देशके ही रहनेवाले है। अर्थात् सारी सृष्टि किसी एकही स्थानमें पैदा हुई मालूम होतीहै।

इस लेखमें आपको दो शंकायें हुई होंगी:—पहिली यह कि "ग्रीनलैण्ड आदिमें मनुष्य क्यों पाये जातेहैं"? दूसरी यह कि "दो प्रकारके सर्द और गर्म प्रदेशोंमें रहनेवाले, बालवाले और विना बालवाले प्राणी एकही देशमें कैसे उत्पन्न हुए, ?"

पहिले प्रश्नके उत्तरमें तो आप समझ सकतेहैं कि जब मनुष्य, वृक्ष और पशुओंके विना अर्थात् दूध और फलोंके विना रही नहीं सकता और पशु विना वनस्पतिके नहीं रह सकते तो ऐसे देशमें जहां ये दोनों पदार्थ न होते हों वह पैदाही नहीं हो सकता। विकाशवादके अनुसार भी यह वहां पैदा नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्यके पहिले बन्दर होना चाहिये और बन्दर विजिटेरियन (शाकाहारी) है इसलिये वह (बन्दर) ऐसे देशमें मनुष्यको उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः मालूम होताहै कि उन देशोंके निवासीमनुष्य जल स्थलके परिवर्तनों, युद्धों और सभ्यताके समय प्रवासोंके कारण वहां गये होंगे और पश्चात् सृष्टिके परिवर्तनोंके कारण वहांसे न आसके होंगे, किन्तु प्रश्न यह है कि पशु पक्षी ऐसे स्थानोंमेंसे किस प्रकार बाहर आ सकतेहैं और किस प्रकार अपने अनुकूल स्थानको जा सकतेहैं? इसके उत्तरमें निवेदन है कि सृष्टिमें जब कभी कुछ अनुकूलता प्रतिकूलता होती है तो पशु पक्षियोंको मालूम हो जाताहै और वे वहांसे चले जातेहैं[१]।

यदि किसी जगह कोई अज्ञात कुआँ बन्द हो और बाहरसे जाहिर न होता हो वहां आप भेडोंको लेजायें भेडें उस कुवेके ऊपर जमीनमें न जायँगी। यदि

१ जो प्राणी जिस देशके अनुकूल बनाया गया है। वहाँकी भूमि, वहाँका जल, वायु उसको खींच लेता है। हिमालयके पक्षी अपने आप वहाँ चले जाते हैं, जल जन्तु आपसे आप पानीमे चले जाते हैं और पशु आपसे आप अपने अनुकूल जल वायुमें चले जाते हैं। मसल मशहूर है कि 'ऊँट नाराज होता है तो पश्चिमको भागता है, क्योंकि मरु देश पश्चिममें है और ऊँट मरु देशोंमें सुखी रहता है। पशु अपना अनुकूल प्रतिकूल स्थान जाननेमें बडे कुशल होते हैं।

उनका गोल बैठेगा तो कुएका हिस्सा छोटदेगा । इनसे भूगर्भ विद्याका बहुतसा हाल मालूम होताहै । किंतु शिक्षाका भिखारी केवल यह मनुष्यही विना बतलाये कुछ भी मालूम नहीं कर सकता और आफत आनेपर वहीं फँस जाता है ।

दूसरे प्रश्नका कि 'सरद और गर्म देशोंमे रहनेवाले प्राणी एकही स्थानमें कैसे हुए' ? उत्तर बड़ाही युक्तियुक्त और सरलहै । हम पहिले बतला आये है कि बीज किसी एक ही स्थानमें बोया जासकताहै अतः इस बृहत्सृष्टिका बीज जिससे दो प्रकारके सर्द और गर्म तासीर रखनेवाले वृक्ष और प्राणी उत्पन्न हुएहै ऐसेही देशमे बोया जा सकता था, जहा सरदी और गर्मी कुदरती तौरसे मिली हों और जो पृथ्वीके सब विभागोंसे अधिक ऊँचा हो अब आप पृथ्वीके गोलेको हाथमें लें और एक एक रेखा एक एक अंश देख डाले जहा ये दो गुण पायेजायँ—अर्थात् जहां:—

१ सरदी और गर्मी कुदरती तौरसे मिलती हों,

२ और वह सरदी गर्मी मिलानेवाला सन्धिस्थान पृथ्वीभरसे ऊँचा हो ।

बस उसीको सृष्टिका आदिस्थान समझले । इसमें अधिक प्रमाण देनेकी यद्यपि आवश्यकता नहीं है तथापि हम यहा कतिपय विद्वानोंके वचन उद्धृत करतेहैं ।

डाक्टर ई. आर. एलन्स, एल आर. सी. पी. अपनी किताब 'मेडिकलखसे' मे लिखतेहैं कि "मनुष्य निस्सन्देह गर्म और मोअतदिल मुल्कोंका रहने-

---

१ जहाँ सरदी और गर्मी कुदरती तौरसे मिलती हैं वह देश वनस्पति पशु और मनुष्योंके मिजाजके अनुकूल तथा सबका खाद्य उत्पन्न करनेवाला होता है । और सरद गर्म दोनों देशोंमें जाने लायक मिजाजवाले प्राणि पैदा कर सकता है ।

२ आदि सृष्टिमें सबसे ऊँचे स्थानकी इसलिये जरूरत है कि उस समय पृथिवी भरमें कहीं आँधी, कहीं तूफान, कहीं ज्वालामुखी, कहीं जलप्लावन, कहीं भूकम्प कई वृक्षोंके जलनेका कारबनगैस कहीं वृष्टि बडी धूमसे पड़ती है पर जो स्थान सबसे ऊँचाहै न तो वहाँ पानी (जलप्लावन) आसके, न अग्निप्रपात निकल सके, न भूकम्पमें पृथिवी फट सके और न वहाँ आँधी अथवा वज्रपात ही का अधिक डर हो । अतएव आदि सृष्टिके लिये गरममें ऊँचा ही स्थान उपयुक्त है ।

वाला है, जहां कि अनाज और फल उसकी खुराकके लिये उग सकतेहैं। इनसानकी गालपर जो छोटे छोटे रोम हैं उनसे साफ मालूम होताहै कि मनुष्य गर्म और मोअतदिल मुल्कोंका रहनेवाला है। किन्तु बड़े रोम सरद मुल्कोंके रहनेवाले मनुष्योंके नहीं होते इससे साफ प्रकट है कि मनुष्य बर्फानी मुल्कोंमें रहनेके लिये नहीं पैदा कियागया''।

इसी प्रकार विद्वान् अल्फर्ड रसल एस. एल. एल. डी. एल. एस. आदिने 'डारविन दी ग्रेट' में भी लिखाहै। देखो सफा ४१० सन् १८८९ लंदन छापा और ऐसाही डाक्टर जनकिन साहबने भी लिखाहै।

मशहूर सोशियालिस्ट कालचेंटर साहब कहतेहैं कि ''मनुष्य मोअतदिल गर्म मुल्कोंके रहनेवाले हैं, कुदरती फल अनाजकी खुराक खाते हैं और वहीं मुल्क उनका स्वाभाविक निवास स्थान है, जहां ऐसी खुराक पैदा होती हो''। देखो रसाले सत्यका बल २८ और कुल्लियात प० लेखराम–आर्य मुसाफिर।

उपरोक्त विद्वानोंकी जांच भी बतलाती है कि ऐसाही मुल्क मनुष्यका जन्म स्थान हो सकताहै जो 'गर्म मोअत्तदिल हो' यह ''गर्म मोअतदिल'' वाक्य बहुतही विज्ञान भराहै। मोअतदिल उरदूमें सम शीतोष्णको कहतेहैं। अर्थात् जहां सरदी और गर्मीका मेल हो, किन्तु जहां गर्मीका हिस्सा अधिक हो वही देश गर्म मोअतदिल कहलाताहै। और वही देश मनुष्यका असली वतन है।

इस आदि भूमिका पता प्रोफसर मेक्समूलर बड़ी जाफिशानीसे जॉच कर बतलातेहैं कि 'मनुष्य जातिका आदि मह एशियाका कोई स्थल होना चाहिये, यद्यपि उन्होंनें एशियामें कोई स्थान निर्दिष्ट नहीं किया किन्तु अपनी पुस्तकोंमें इसी प्रकारके विचार प्रकट कियेहैं। परन्तु इन विषयोंकी अधिक खोज करनेवाले अमेरिका निवासी विद्वान डेविस 'हारमोनिया' नामी पुस्तकके पाँचवे भागमें जरमनीके प्रोफेसर 'ओकन' की साक्षी सहित इस बातको प्रतिपादन करतेहैं कि

'क्योंकि हिमालय सबसे ऊचा पहाड है इसलिये आदिसृष्टि हिमालयके

निकट ही कहीं पर हुई' (देखो डेनिसरचित हार्मोनिया भाग ९ पृष्ठ ३२८)

पहिले और इन दोनों योरोपीय विद्वानोंकी साक्षीसे यह बात सिद्ध होगई कि मनुष्योंकी आदि सृष्टि 'गर्म मोअतदिल और पृथिवीके सबसे ऊंचे स्थानमें हुई साथही वह देश और स्थान भी मालूम होगया कि वह देश एशिया और स्थान हिमालय है जो शीत और उष्णको मिटाता और पृथिवीभरमें सबसे ऊंचा है। अब हम ससार भरकी साक्षीसे सिद्ध करतेहैं कि वह स्थान कौन है?

मुम्बईकी 'ज्ञान प्रसारक मण्डलीकी प्रेरणासे कामजी कावसजी हाल्में संसारभरकी साक्षी मिस्टर खुरशेदजी रुस्तमजी (जो एक मशहूर विद्वान थे) 'मनुष्योंका मूल जन्म स्थान कहाँ था' इस विषयपर व्याख्यान दिया था। उसका साराश यहाँ उद्धृत करतेहैं।

''जहाँसे सारी मनुष्यजाति संसारमें फैली। उस मूलस्थानका पता हिन्दुओं, पारसियों, यहूदियों और क्रश्चियनोंके धर्म पुस्तकोंसे इस प्रकार लगताहै कि वह स्थान कहीं मध्य एशियामें था। योरोपीय निवासियोंकी दन्तकथाओंमें वर्णनहै कि हमारे पूर्व राजा कहीं उत्तरमें रहते थे। पारसियोंकी धर्म पुस्तकोंमें वर्णनहै कि जहाँ आदि सृष्टि हुई वहाँ १० महीने सरदी और दो महीने गर्मी रहतीहै। माउराट—स्टुअर्ट, एलफिन्स्टन, बरनस आदि मुसाफिरोंने मध्य एशियाकी मुसाफिरी करके बतलायाहै कि हिन्दुकुश पहाड़ोंपर १० महीनेकी सरदी और दो महीनेकी गर्मी होतीहै। इससे ज्ञात होताहै कि पारसी पुस्तकोंमें लिखाहुआ 'ईरानवेज' नामका मूलस्थान जो ३७° से ४०° अक्षांश उत्तर तथा ८६° से ९०° रेखांश पूर्वमें है निस्सन्देह मूल स्थान है, क्योंकि वह स्थान बहुत उचाईपर है। उसके ऊपरसे चारों-ओर नदियाँ बहतीहैं। इस स्थानके ईशान कोणमें 'बाल्लूर्तांग' तथा 'मुसा-ताग' पहाड हैं। ये पहाड 'अल्बुर्ज' के नामसे पारसियोंकी धर्म पुस्तकों और अन्य इतिहासोंमें लिखेहैं। बल्लूर्तागसे 'अमू' अथवा 'आक्ससस' और 'जेक जार्टस' नामकी नदिया 'अरल' सरोवरमें होकर बहतीहैं। इसी पहाड़मेंसे 'इन्डस' अथवा 'सिंधु' नदी दक्षिणकी ओर बहतीहैं। इसीओरके

पहाडोंमेंसे निकलकर बडी २ नदियाँ पूर्वतरफ चीनमें और उत्तर तरफ साइबीरियामें भी बहतींहैं ऐसे रम्य और शांत स्थानमें पैदा हुए अपनेको आर्य्य कहतेथे और इस स्थानको 'स्वर्ग' कहा करतेथे" यह देश उत्तर हिन्दुकुशसे लेकर तिब्बत तक फैला था यहीं कहीं कैलास और मान सरोवर भी था यही कारणहै कि स्वर्ग और त्रिविष्टप (तिब्बत) पर्य्याय माने गये हैं । अमरकोशमें लिखाहै कि 'स्वरव्यय् स्वर्ग नाक त्रिदिव त्रिदशालयाः । सुरलोको द्यो दिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम् , अर्थात् स्वर्ग और त्रिविष्टप (तिब्बत्) एकही स्थानहैं ।

दुनियाभरके विद्वानों और एतद्देशीय पण्डितोंकी सम्मतियोंको ध्यानमें रखकर--अपने समयका सबसे बडा आर्यमतीय विद्वान स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सत्यार्थ प्रकाशमें लिखताहै कि 'आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बतमें हुई' । तिब्बत यथार्थमें दक्षिणकी गर्मी और उत्तरकी शरदीको जोडताहै वह ऊंचा भी है तथा मनुष्यके मिजाजके अनुकूल और उसका खाद्यभी उपजानेवाला है अतएव अब हम अपने द्वितीय प्रश्नका उत्तर खतम करते हुए विद्वानोंका ध्यान इसओर आकर्षित करतेहैं कि आदि सृष्टि हिमालय पर ही हुई और वहींसे मनुष्य सारी पृथिवीमें गये । यह ख्याल गलतहै कि मनुष्य पृथिवीके हरभागमें पैदा हुए ।

तीसरे प्रश्नका उत्तर ।

क्या मनुष्य कोई न कोई भाषा बोलता हुआ ही पैदा हुआ? इस प्रश्नके उत्तरमें यद्यपि अधिक माथा मारी करनी व्यर्थ है तथापि हम कुछ दलीलें और योरोपके विद्वानोंकी रायें लिखेंगे । इस विषयमें हम भारतवर्षकी अधिक रायें न लिखेंगे, क्योंकि यहाका पुरानेसे भी पुराना इतिहास,यहाकी फिलासफी(दर्शन), यहाका विज्ञान सभी एकस्वर होकर चिल्लातेहैं कि आदिसृष्टिमें मनुष्य सभी प्रकारके ज्ञान, भाषा, आचार और प्रबन्ध बुद्धियोंके सहित पैदा हुए थे, जहां की एकदम एकतरफा ऐसी डिगरी है वहाका प्रमाण उद्धृत करना भी न करनेके बराबर है ।

भाषाविषयमें हम देखतेहैं कि हिन्दोस्तानका बच्चा जिस प्रान्तमें पैदा होताहै

अपने प्रान्तकी ही (बङ्गला मराठी गुजराती हिन्दी आदि) भाषा बोलने लगताहै । प्रान्तकी नहीं किन्तु अपने गांवकी विशेष कर अपने घरकी और ज्योंकी त्यों अपनी माताकी भाषा बोलताहै । इसी लिये भाषाका 'मातृभाषा' नाम पडा है । हिन्दोस्तान ही में क्यों ? सारी पृथिवीके बच्चे अपने देशकी और विशेष कर उसकी भाषा बोलतेहैं, जिसकी गोदमें पलतेहैं । हम ताज्जुब करतेहैं कि हिन्दोस्थानका बच्चा अंगरेजी क्यों नहीं बोलता । अथवा योरोपके लडके संस्कृत क्यों नहीं बोलते । क्या इसका यही कारण नहीं है कि बच्चे जो कुछ सुनतेहैं वही बोलतेहैं । अर्थात् बच्चोंको बोली बुलवानेके लिये उनके कानके पास कुछ बोलना पडताहै । मतलब यह कि बगैर सिखाये कोई भी मनुष्य बोल नहीं सकता ।

बिना सिखायेहुए, सिखानेवालोंकी भाषा न सही, पर अपने आप ही कोई नई भाषा तो उसे जरूर बोलना चाहिये, क्योंकि बोलनेका यन्त्र मुंह और उसके अन्दर सब पुरजे तो हैं किन्तु अफसोस वह कोई नई भाषा बना भी नहीं सकता । यह बात हमको तब प्रमाणित होतीहै, जब हम किसी जन्मबधिरकी ओर ध्यान देतेहैं । आपने सैकडो गूंगे मनुष्य देखे होंगे, उनको बहरा भी पाया होगा * किन्तु यह न देखा होगा कि उन्होने कोई भाषा अपनी सारी उमरमें भी बनाली हो । क्यों बहरा कोई भाषा बना नहीं सकता ? क्यों प्रत्येक जन्म बधिर गूंगाही होताहै ? इसलिये कि उसको किसीकी भाषा सुनाई नहीं पडती । यदि कहो कि बहरेके मुखतन्तु खराब होजातेहै इसलिये वह नहीं बोल सकता तो इसका भी वही अर्थ हुआ कि यदि वह सुनता तो जरूर वही सुनी हुई भाषा बोलनेकी कोशिश करता, किन्तु उसने सुना नहीं, अर्थात् शिक्षा नहीं मिली इसी लिये काम न पडनेके कारण यन्त्र भी खराब होगया, पर "गूंगे बहरे स्कूलोंमे उनसे यन्त्रके सहारे बोलवा भी दिया जाताहै" । यह भी एक प्रबल प्रमाण है कि मनुष्य बिना शिक्षाके कोई भाषा बना नहीं सकता ।

* केवल गूंगे अर्थात् जिनका वाग्यन्त्र बिगडा हो, बहुत थोडे होते हैं, प्राय गूंगे जन्म बधिर ही होते हैं ।

कान और मुख दुरुस्त होते हुए भी अर्थात् बिना बहरे और गूंगे-पनके भी अगर किसी बच्चेको मनुष्यकी भाषा सुननेको नहीं मिली तो वह कोई भाषा बोल नहीं सकता और न आजीवन कोई भाषा बना सकता है।

बहुधा बच्चे भेड़ियोंकी मान्दोंमें पायेगये हैं। और जब कभी वे पायेगये हैं, चाहे उनकी आयु सोलह या बीस वर्षकी भी होगई हो, पर उनमें वही भेड़ियोंके शब्द ("गुर्राने") के अतिरिक्त शुद्ध प्रकारके उच्चारण करनेकी भी सामर्थ्य नहीं पाईगई। ये बातें गढ़क गानेकी गप्पें नहीं हैं किन्तु ये वे घटनायें हैं जो योरोप और एशिया तथा हिन्दोस्थानमें अनेक बार होचुकी हैं और अंगरेजी तथा हिन्दी (सरस्वती आदि) पत्रोंने अनेक बार इनपर निबन्ध लिखे हैं। अभी थोड़े समयकी बात है इसी प्रकारका एक मनुष्य खेतोंमें भेड़ियोंकी मान्दके आसपास चारों पावोंसे चलताहुआ (मनुष्यकी सूरतका) देखागया, लोग उसे पकड़ लाये और दो चार रोज गावमें रखकर देखा, पर वह सिवा मासके न कुछ खाता था न बोलता था, मारे डरके कापता था। यह हाल देखकर लोगोंने उसे आर्य समाजके अनाथालय बरेलीमें पहुचादिया। बहुत दिनतक वह वहा रहा और जीता रहा। अब नहीं कह सकते कि वहा है या नहीं। कहनेका मतलब यह कि उसके कान भी दुरुस्त थे और मुख-यन्त्र भी ठीक था, पर वह कोई नई भाषा बना नहीं सका।

प्रोफेसर मेक्समूलर कहतेहैं कि मिश्रके बादशाह 'सामीटीकस' ने दो सद्यःप्रसूत बालकोंको गडरियेके सुपुर्द किया और ऐसा प्रबन्ध किया कि पशुओंके अतिरिक्त मनुष्योंकी भाषा सुननेको न मिले, जब लड़के बड़े हुए तो देखा गया कि उनको 'कू' 'बा' के अतिरिक्त कुछ भी बोलना नहीं आता था। इसी प्रकार 'सवाबीन' 'द्वितीय फ्रेडरिक' 'चतुर्थ जेम्स' और अकबरशाह दिल्ली आदिने भी परीक्षार्थ बच्चोंको मनुष्यकी भाषासे पृथक् रखकर देखा, पर अन्तमें यही पाया कि मनुष्य बगैर सिखाये भाषा सीख नहीं सकता। (देखो साइन्स आफदी लाग्वेज पृष्ठ ४८१) पर-

'डार्विन' और उसके सहयोगी 'हक्सले' 'विजविड' और 'कोनिनफार' ने - बातें ... चेष्टा की है कि "भाषा ... ...

नहीं है, भाषा शनैःशनैः ध्वन्यात्मक शब्दों और पशुओंकी बोलीसे उन्नति करके इस दशाको पहुची है'' । किन्तु डारविनके इस मन्तव्यका प्रबल खण्डन प्रोफेसर 'नायर' ने उसी समय किया और अब मैक्समूलर भी इस विषयमें डार्विनादिके प्रतिपक्षी हैं । वे कहतेहैं कि 'मनुष्यकी भाषा, ध्वनि अथवा पशुओंकी बोलीसे नहीं बनी' । प्रोफेसर 'पाट' भी बड़ी उत्तमतासे डारविनके सिद्धान्तका खण्डन करतेहुए बतलातेहैं कि "भाषाके वास्तविक स्वरूपमें कभी किसीने परिवर्तन नहीं किया, केवल बाह्य स्वरूपमें कुछ परिवर्तन होते रहे हैं पर किसी भी पिछली जातिने एक धातुभी नया नहीं बनाया । हम एक प्रकारसे वही शब्द बोलरहेहैं, जो सर्गारम्भमें मनुष्यके मुखसे निकले थे'' ।

'डाक' एडमस्मिथ' 'डयूगल्डस्टुआर्ट' आदिके कथनानुसार मनुष्य बहुत कालतक गूगा रहा । सकेत और भ्रूप्रक्षेपसे काम चलाता रहा । जब काम न चला तो भाषा बनाली और परस्पर संवाद करनेमें शब्दोंके अर्थ नियत करलिये' इसका उत्तर प्रो० मैक्समूलरने इतना मुंहतोड दिया है कि सुनते ही बनता है । आप फरमाते हैं कि "मैं नहीं समझता कि बिना भाषाके उनमें परस्पर संवाद किस प्रकार जारी रह सका । क्या अर्थ नियत करनेके पूर्व संवाद निरर्थक ही चला आता था"' । इसके आगे आप कहतेहैं कि 'मेरा

---

१ 'मुझमें बोलनेकी शक्ति स्वाभाविक कुदरती है,' इस बातको मानतेहुए निसर्गवादी लोग कहते हैं कि पशु पक्षियोंके शब्दों, नदी समुद्रके गर्जन, पत्थर लकड़ीके टकरानेकी आवाज़ोंसे मनुष्योंने अपने शब्द बनाये । पर इस विषयमें जो विचार आता है वह यह है कि 'मनुष्यके स्वभावसे प्रकट होता है कि वह जोड़ बाँधकर रहनेवाला है, सिंहकी भाँति अकेला रहनेवाला नहीं' ऐसी दशामें यदि पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ानेवाला सबसे बड़ा साधन 'भाषा' न हो और उसको स्वयं भाषा बनानी पड़े तो यह बात दावेके साथ कही जा सकती है कि एक कुटुम्बकी भाषा भी समय पर कभी एक न हो । क्योंकि यदि कोई 'हू' कहे, सम्भव है, दूसरा उसे 'धम्' कहे और [illegible] उसीको 'चूँ चूँ' कहने लगे । अब [illegible] 'हू' 'धम्' और 'चूँ चूँ' मेंसे (कमसे कम एक कुटुम्बके) बोलनेके लिये कौनसा शब्द नियत किया जाय ? इस तरहसे विषयके निर्णय करनेका कोई भी साधन उस समय नहीं पाया जाता, जैसे एक अपने पक्षका [illegible] और दूसरेका खण्डन करके अपनी बातको ही ठीक सिद्ध करनेके लिये ज़ोर दे और कोई दूसरा उसका अनुमोदन या विरोध–

मुख्य उद्देश यह सिद्ध करना है कि भाषा मनुष्यकी बनाई हुई नहीं है। मैं मेक्समूलरसे सहमत हूँ कि "शब्द अनादि कालसे बनेबनाये हैं" बल्कि उसमें इतना और जोडदेना चाहताहूँ कि 'शब्द अनादि कालसे बनेबनाये हैं और वे ईश्वरकी ओरसे हैं' (देखो साइंस आफ दी लांग्वेज)

भाषा ईश्वरदत्त है,इस विषयमें ऋषि कहतेहैं कि 'सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि भारतीय प्रमाण च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' मनु० १-२१ सृष्टिकी आदिमें परमात्माने वेदोंसे सबके नाम कर्म्म और व्यवस्था अलग२ निर्म्मित किया। 'तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च। सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः' मनु० १-२५ अर्थात्-प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले (परमात्मा) ने तप 'वाणी' रति काम तथा क्रोधको उत्पन्न किया। वेद स्वयं कहताहै कि 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः' जिस प्रकार मैंने कल्याणकारी वाणी मनुष्योंको दी है। इत्यादि प्रमाण काफी है।

भाषा मनुष्योंको क्यों दीगई? मनुष्य विना नैमित्तिक ज्ञान पाये यदि अपने स्वाभाविक पोजीशनमें रक्खा जाय तो वह उसी प्रकारका हो सकताहै, जैसा अभीका पैदा हुआ बच्चा। वह खानेके लिये मुंह चलाना, पीनेके लिये घूँटना मात्र जानताहै, पर क्या खाना क्या पीना आदि बिल्कुल नहीं जानता। वह दूध पानी आदिको नहीं पहिचानता। जबतक माता स्तनको मुंहमें न लगादे तबतक वह स्तनोंको भी नहीं ढूँढ सकता। सृष्टिकी आदिमें यदि इस प्रकारकी पैदा हुई सृष्टि मानें तो बरबस मानना पडेगा कि ऐसी मनुष्यसृष्टि विना माता पिताके एक दिन भी जी नहीं सकती। क्योंकि हम देखतेहैं कि पलक मारना, छींकना, खासना, श्वास लेना, जम्हाई, रोना, हँसना, चलचलाना, घूंटना आदि ही मनुष्यका स्वाभाविक ज्ञान है। इसके अतिरिक्त 'यह पानी है' 'यह दूध है', 'यह स्तन है', 'यह माता है,' आदि तमाम ज्ञान नैमित्तिक है। "खडे होना और दो पैरसे चलना भी नैमित्तिक है" क्योंकि जो लडके भेडियोंकी मांदमें पायेगये हैं,

---

—रहे? अतएव मानना पडेगा कि उनके पास ? ? शब्द भाषा थी। अर्थात् उनके पास पूर्ण साथ भाषा विद्यमान थी।

सब चारों पावसे ही चलते देखेगये है। "हाथोंको मुंहमें लेजाना भी नैमित्तिक है" क्योंकि माटमें पायेहुए मुंहसे ही पानी पीते देखेगये हैं । 'हाथसे कुछ पकड़ना भी बिलकुल ही नैमित्तिक है,' क्योंकि कई महीने तक तो लड़केकी मुठी ही नहीं खुलती 'इसी प्रकार भाषा भी नैमित्तिक है,' क्योंकि नांदवाडे लड़के सिवा 'कूं कूं' के और कुछ भी बोलते हुए नहीं देखे गये । मतलब यह कि मनुष्यमें जो कुछ मनुष्यता है, सब नैमित्तिक और ईश्वरके निमित्तसे है. कारण कि 'मनुष्यता' मनुष्य अथवा ईश्वरसे ही सीखीजा सकती है । मनुष्यको मनुष्य बनानेवाला संसारमें और दूसरा कोई प्राणी नहीं है ।

मनुष्यकी इस असली हालतसे समझ सकतेहो कि आदि सृष्टिमें उसको कितने निहायत जुरूरी नैमित्तिक ज्ञानोंकी आवश्यकता थी । सबसे पहिले उसे खाने पीने अर्थात् जीवनयात्रा सम्बन्धी पदार्थोंकी पहिचान निहायत जुरूरी थी । दूसरे इस अपरिचित अतएव अद्भुत सृष्टिका कुछ हाल जानना भी कम जुरूरी नहीं था । तीसरे समस्त मनुष्योंसे मिलकर एक दूसरेको सान्त्वना प्रेमालाप और शंका समाधान करके उचित व्यवस्था करनेका ज्ञान भी उतना ही आवश्यक था, जितना भोजन । चौथे मैं कौन हूं, यहां क्यों आया किसने भेजा, मेरा सबसे अन्तिम कर्तव्य क्या है ? यह ज्ञान उपरोक्त तीनों ज्ञानोंसे भी अधिक जुरूरी था ।

उस समय—आदि सृष्टिके समय यदि इतना ज्ञान न दिया जाय तो मनुष्य भूंख प्यास सर्दी गर्मीसे अपनी रक्षा न कर सके, सूर्य चन्द्र नदी समुद्र वन पर्वत मेघगर्जन और विद्युत तथा सिंह व्याघ्रको देखकर घबराजाय । शादी विवाह वंशस्थापन भी न हो सके और न अपना कर्तव्य जानकर अपने उस लक्ष्य (मोक्ष) को पहुंच सके, जिनके लिये वह पैदा कियागया है । इससे

१ जो लोग पशुओंकी मिसाल देते हैं कि 'पशु बिना सिखाये खाने पीने और जीते हैं उसी प्रकार मनुष्यने भी क्रम क्रम उन्नति की' वे गलतीपर हैं । आजतक किसी पशुके बच्चेको उसकी मांका स्तन तलाश करनेके लिये किसीने नहीं सिखलाया । वह पैदा होते ही खड़े होकर अपनी मांका स्तन ढूंढलेता है, पर क्या कभी मनुष्यके बच्चेने भी पैदा होते ही अपनी मांका स्तन ढूंढ लिया है ? नहीं । अतः उसे नैमित्तिक ज्ञानकी निहायत जरूरत है ।

ज्ञात होताहै कि उनमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म विस्तृतसे विस्तृत और विशदसे विशद ज्ञान विद्यमान था। वे सृष्टि होनेका कारण जानचुके थे। उन्हे बतला दियागया था कि 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' 'शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये' 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्' 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी' 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं ॐ' 'ईशावास्य मिदं ॐ सर्वं' 'समानीप्रपासहवो अन्नभागः 'यथेमां वाचं मावदानि जनेभ्यः,' 'संगच्छध्वं सवदध्वं,' आदि अर्थात् मत घबराव 'यह सूर्य चन्द्र वैसे ही हैं जैसे पहिले कल्पमें थे' 'यह देखो जल तुम्हारे पीनेके लिये है 'घी दूध फल शहद खानेके लिये है,' 'तुम जीवहो कर्मानुसार स्त्री पुरुष और अन्य पशुपक्षी आदि योनियोंमें जन्म पातेहो' 'कर्म करतेहुए सौ वर्ष जीना' 'इस संसारका स्वामी 'ईश्वर' समझना' और मोक्ष प्राप्त करना तथा सब मनुष्य मिल जुलकर खानापीना' आपसमें मिलजुलकर चलो बोलो बातचीत करो और सबको 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे' मित्रदृष्टिसे देखो। इस प्रकारका सूक्ष्म और विशद ज्ञान उनको उसी समय दियागया था। यह ज्ञान विना भाषाके सहारे किसी प्रकार भी नहीं दिया जा सकता था और न विना भाषाके यह ज्ञान स्थायी रहकर उनके वंशजोंको मिल सकता था, क्योंकि हम देखते हैं कि विना भाषाके इस प्रकारका आयन्त (पूर्ण) सूक्ष्म ज्ञान 'गूंगे—बहरे मनुष्योंको शीघ्रतासे वा देरसे नहीं सिखलाया जा सकता और न यह गूंगा—बहरा किसी दूसरेको ही कुछ सिखला सकताहै' अतएव मानना पडेगा कि मूलपुरुषोंको सूक्ष्म ज्ञान सिखाने और वह ज्ञान औरोंमें फैलानेके लिये उनको परमात्माने भाषा अवश्य दी।

उपरोक्त सिद्धान्तपर लोग शंका कर सकतेहैं कि "जिस प्रकार विना भाषाके भाषा मनुष्यको सूक्ष्म ज्ञान नहीं सिखलाया जा सकता उसी प्रकार विना किसी वैसे दी गई भाषाके भाषा भी तो नहीं सिखलाई जा सकती। जब आदि सृष्टिमें कोई मनुष्य किसी भाषाका बोलनेवाला थाही नहीं तो मूलपुरुषोंने भाषा किससे कैसे सिखी?"

भाषा सिखानेके लिये मनुष्योंको सुनने और जोरसे बोलनेकी जुरूरत इसलिये होतीहै कि उनके कान और मस्तिष्क लोगोंके सुने हुए हैं। यदि

देखकर भयभीत हुए मनकी शान्ति, समाज और सन्तानकी शिक्षा, प्रेम और प्रबन्ध तथा अपने कर्तव्यपालनकी शिक्षा आदिके लिये आदि सृष्टिमें ज्ञानकी आवश्यकता थी ।

प्र०—भाषा और ज्ञानके सिखानेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या क्रम २ उन्नति नहीं हो सकती ?

उत्तर—नहीं । यदि बिना सिखाये ज्ञान और भाषा आजाती तो स्कूल और कालेज क्यों खोलेजाते ? सबलोग क्रम २ उन्नति कर न लेते ?

प्र०—स्कूल विशेष ज्ञानके लिये खोले जातेहैं उस समय तो साधारण ज्ञानकी आवश्यकता थी ।

उत्तर—उसी समय तो विशेष ज्ञानकी आवश्यकता थी, क्योंकि सब मनुष्य एक अपरिचित स्थानमें एकाएक आये थे ।

प्र०—बिना उस्ताद और बिना उस्तादके मुहके भाषा और ज्ञान कैसे सिखाया जा सकताहै ?

उत्तर—जिस प्रकार मेस्मरेजम करनेवाला अपने सबजेक्टसे बिना सीखी हरकत और बिना सुनी हुई भाषा बोलवा देताहै उसी प्रकार अन्तर्यामी परमात्माने भी सिखाया ।

प्र०—मनुष्यको ही क्यों ज्ञान और भाषा सिखानेकी आवश्यकता हुई ?

उत्तर—यद्यपि इसका वर्णन बहुत है तथापि साराशरूपसे समझो कि मनुष्यको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये भाषा और ज्ञान दियागया है ।

भाषाका मुख्य उद्देश्य आ मरणा सामाजिक व्यवहार और मोक्ष है मनुष्य सबसे ज्ञान और समाजप्रिय प्राणी है इसलिये उसमें समान बन्धन दृढ करनेके लिये—एक मन एकबुद्धि एकविचार होनेके लिये ही परमात्माने उसे वाणी दी है * ऐसी दशामें सबकी एक ही भाषा होनी चाहिये ।
भाषा एक ही थी

* शिवा वाणीके ' सार्वजनिक सामाजिक व्यवहार साधक ' और कोई दूसरा साधन नहीं है । जब सबको एक करनेके लिये उसने यह साधन दिया तो क्या वह साधन अनेक प्रकारका होगा ? कभी नहीं । अनेक प्रकारका होना माननेमें वाणीके असली अभिप्राय सार्वजनिकता पर घोर अत्याचार होता है और परमेश्वर पर आक्षेप होना है ।

भाषा ईश्वरदत्त है। वह निस्सन्देह सबके लिये सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, सर्दी, गर्मीकी भाँति समान है। ऊपर हम सृष्टि नियमों और विद्वानोंके प्रमाणोंसे सिद्ध कर आये हैं कि भाषा निस्सन्देह देवदत्त है अतएव वह अवश्य एव निश्शसय सबकी एक ही थी तथापि हम यहा दो एक योरोपके भाषा-तत्त्व जाननेवालोंकी गवाही लिखे देतेहैं।

योरोपमें आजतक प्रो० मेक्समूलरकी भाति बहुभाषाज्ञानी कोई भी पडित नहीं हुआ। पृथ्वीकी ९०० भाषाओंको एक गहरी नजरसे देखकर वह कहताहै कि 'भाषाओंके बिगाडनेका कारण मनुष्यकी असावधानी है' सेमिटिक भाषाओंको आर्यभाषाओंसे पृथक् बतलाता हुआ भी मेक्समूलर आगे चलकर कहताहै कि 'आर्यभाषाओंके 'धातु' रूप और अर्थमें सेमिटिक अराल-आटक, बन्टो, और ओशनिया, की भाषाओंमे मिलतेहैं' अन्तमे कहताहै कि, 'निस्सन्देह मनुष्यकी मूलभाषा एक ही थी'। इसीकी पुष्टि 'एण्डोजेक्सन डेविस' इस प्रकार करताहै कि 'भाषा भी जो एक आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और आदि है। भाषाके मुख्य उद्देश्यमें कभी उन्नतिका होना सम्भव नहीं, क्योंकि उद्देश्य सर्वदेशी और पूर्ण होतेहैं,. उनमें किसी प्रकार भी परिवर्त्तन नहीं हो सकता। वे सदैव अखण्ड और एकरस होतेहैं' * (देखो हारमोनिया भाग ९ पृष्ठ ७३ एण्डोजेक्सनडेविस) इन विद्वानने भी वही सार्वजनिक साधनकी दलील देकर एक भाषाकी गवाही दी है।

भाषाके साथ ज्ञानका सम्बन्ध? भाषा मनुष्यको परमात्माने क्यों दी है, इसका वर्णन पूर्वप्रकरणमें आगया है। किन्तु यहा कुछ स्पष्टरीतिसे दिखलाना चाहतेहैं। भाषाका उद्देश 'सार्वजनिक साधन' मानागया है, क्योंकि मनुष्य समाजके बिना एक दिन जी नहीं सकता। संसारमें "समाजका दास जैसा मनुष्य है, दूसरा कोई प्राणी नहीं है। इसका कारण यह है कि यह

* इस विद्वान्ने आदि भाषाको एक होने हुए यह भी सिद्ध किया कि यह पूर्ण होती है और उसके अंदर जो कुछ अर्थ या ज्ञान होताहै वह भी सर्वदेशी और पूर्ण होता है, क्योंकि इसने सार्वजनिक साधक वही भाषा होती है, उसन 'सर्वसाधन' रहना ही चाहिये। लोग वेदोंको इसी प्रकार सर्व विशायुक्त मानते है और इसी लिये इनका मान होता है।

अपना कोई भी काम विना दूसरेकी मदद कर नहीं सकता। पैदा होनेके दिनसे लेकर मृत्युकी घडीतक खेलने कूदने शादी विवाह धन उपार्जन बीमारी तकलीफ गरीबी अमीरी आदि सभी दशाओंमें इसको मनुष्यकी दरकार होतीहै। मनुष्यके साथ सम्बन्ध दृढ करनेका मात्र साधन भाषा है। इसी लिये भाषाको सार्वजनिक नाम दियागया है। यदि मनुष्यको मनुष्यसमाजमें रहनेकी दरकार न हो तो उसे वाणीकी भी दरकार न होगी। सच तो यह है कि वाणी होकर भी वह किससे बोलेगा?

किन्तु विचार यह करना है कि भाषाके साथ अर्थका क्या सम्बन्ध है? आप जरा गौरसे अपने मनमें देखें तो पता लगेगा कि बोलनेके पहिले आपके मनमें जो कुछ विचार उत्पन्न होतेहैं उन्हींको आप बोलतेहैं। और प्रत्येक विचारको बाहर प्रकट करनेके लिये आप पहिलेहीसे अपने पास शब्द पातेहैं। यदि कहीं कोई नया विचार सीखतेहैं तो वहा भी विचार और तत्सम्बन्धी शब्द दोनो नये २ एक साथ सीखतेहैं। मानो कोई विचार बिना शब्द और कोई शब्द बिना विचारके रह़ी नहीं सकता। इसी लिये कहागया है कि शब्दका अर्थके साथ उसी प्रकारका सम्बन्ध है, जिस प्रकार अग्नि और गर्मीका है। इसपर 'कोलरिज' कहताहै कि 'भाषा मनुष्यका एक आत्मिक साधन है' जिसकी पुष्टि महाशय ट्रैनिचने इस प्रकार की है कि 'ईश्वरने मनुष्यको वाणी उसी प्रकार दी है, जिस प्रकार बुद्धि दी है, क्योंकि मनुष्यका विचार ही शब्द है, जो बाहर प्रकाशित होताहै।' (देखो स्टडी आफ वर्डस आर. सी. ट्रैनिच डी. डी.

इससे ज्ञात होताहै कि भाषाके साथ ज्ञान अर्थात् अर्थका सम्बन्ध बनावटी नहीं किन्तु स्वाभाविक अतएव वैज्ञानिक है।

हम इस शरीरसें (जो परमात्माकी करामतसे दियागया है) ज्ञान और शब्दका घनिष्ठ सम्बन्ध बडा ही विचित्र पातेहैं। अब प्रश्न यह है कि आप ज्ञान कहांसे प्राप्त करतेहैं? पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंसे न? अच्छा अब आप देखें कि जहा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय है उन्हींके बीचमें उस ज्ञानको बाहर निकालनेवाला मुख विद्यमान है न? क्यों मुख पीठपर न बनायागया? मैं तो कहताहूँ कि मुख

अगर हाथकी अधेलीपर होता तो लेकचर सुन देते बनता और भोजन करनेमें सुविधा होती पर क्या मुंख अपनी प्यारी सहचरी ज्ञानेन्द्रियोंसे कभी जुदा रह सकता था ? क्या कभी ऐसा हो सकता है कि 'नाम' और 'नामी' अलग अलग हों ? यह रचना भी हमको एक लेकचर सुनातीहै कि ज्ञान और शब्दका स्वाभाविक मेल है ।

जब कोई आदमी कोई ऐसी चीज खाताहै जिसको पहिले उसने कभी नहीं खाया और दूसरा आदमी जब पूछताहै कि कहो इस पदार्थका स्वाद कैसा है तो वह तबतक किसी भी शब्द द्वारा उस पदार्थके स्वादको नहीं समझा सकता, जबतक उस पदार्थको पूछनेवालेके मुँहमें रखकर उसके स्वादका ज्ञान न करादे । क्या यह रहस्य हममें यह नहीं कहता कि शब्द विना ज्ञानके निरर्थक है । हमें इस विषयको उस वाणीके साथ मिलाना चाहिये, जो ईश्वरकी ओरसे दीगई है । और प्रश्न करना चाहिये कि क्या वह भाषा बिना ज्ञानके थी ? उपरोक्त वर्णनने सिद्ध करदिया है कि बिना ज्ञानके वाणी निरर्थक है । परमात्माका कोई भी काम निरर्थक हो नहीं सकता, क्योंकि उसने जब भाषाको सार्वजनिक साधन बनाकर दिया है तो उस भाषाका कोई अर्थ अथवा उसमें कोई ज्ञान न हो तो सार्वजनिक साधन ही क्या हुआ ? क्या हू हू वा काउँकाँउ वाली भाषासे कोई सार्वजनिक काम चल सकताहै ? इसलिये मानना पड़ेगा कि भाषाके साथ ज्ञान (अर्थ) का सम्बन्ध स्वाभाविक है ।

जो बात हम भाषामें देखतेहैं कि उसे कोई बना नहीं सकता वही बात ज्ञान ईश्वर दत्त है हम ज्ञानमें भी पातेहैं कि विना सिखाये हुए कोई कुछ भी नहीं मनुष्य कृत नहीं ज्ञान सीख नहीं सकता संसारमें सैकड़ों जङ्गली जातियाँ इस वक्त मौजूद हैं, जो सातिन बीसतक गिनती नहीं गिन सकतीं । दूसरी तरफ ज्योतिष विज्ञान कलाकौशल गणित भूगर्भमें लोग जमीन, आसमान एक कररहे हैं, इनका क्या मतलब है ? इतिहास बतला रहा है कि एक देश दूसरे देशसे, एक जाति दूसरी जातिसे और एक मनुष्य दूसरे मनुष्यसे उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करता चला आरहा है, जिस प्रकार एक दूसरेसे भाषा सीखना आता है । धर्म जैसे पारलौकिक विषय भी मनुष्यमें न जानें कबसे पाये

जांतेहै। 'ईश्वर' जैसा विषय जो 'सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' कहलाताहै उसे भी मनुष्य जानतेहै और बड़ी खूबीसे साबित करतेहैं यद्यपि किसीने उससे मुलाकात नहीं की। ऐसी दशामे मानना पड़ताहै कि आदि सृष्टिमे ज्ञान भी परमात्माकी ही ओरसे दियागया और क्रम२ गुरु,शिष्य परम्परासे सारे संसारमे उसी प्रकार फैला, जैसे भाषा फैली। इसपर योरोपमे फिलासफीका आदि प्रचारक 'डिस्कार्टीज' हिर्ष्ट्री आफनेचरलिस्मे लिखताहै कि:—

"जब मै बहुत दूर और गहरायी तक सोचताहू तो ज्ञात होताहै कि ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान मनुष्य आप ही आप अपने हृदयमे पैदा नहीं कर सकता, क्योंकि वह अनन्त है, हमारा मन सान्त है, वह व्यापक है, हम एकदेशी है और भी इसी प्रकार समझिये इससे यह बात स्पष्ट है कि मूल विचारोंको हमने स्वयं नहीं बनाया किन्तु परमात्माने आदिपुरुषोंके हृदयोंमे अपने हाथसे छाप लगादी है"।

इसी प्रकार मेडम ब्लेवेटसकी अपनी पुस्तक 'सिक्रेट डाकट्रिनमे कहतीहै कि:—

'अनेक बड़ेबड़े विद्वानोंने कहा है कि उस समय भी कोई नवीन धर्म प्रवर्त्तक नहीं हुआ, जब आर्यों सैमिटिकों और तूरानियोने नया धर्म व नवीन सभ्यताका आविष्कार किया था। ये धर्मप्रवर्त्तक भी केवल धर्मके पुनरुद्धारक थे मूलशिक्षक नहीं'।

चिप्सफ्राम ए जर्मन वर्कशाप नामी पुस्तकमे तो प्रो० मेक्समूलरने साफ लिखदिया है कि "आदि सृष्टिमे लेकर आजतक कोई भी बिल्कुल नया धर्म हुआ ही नहीं"

ये वाक्य हमे बतलातेहै कि कभी कोई नवीन सचाई मनुष्य आप ही आप अपने मगजसे निकाल नहीं सकता बल्कि दोहराता अथवा पुराने ज्ञानका जीर्णोद्धार करताहै। यह बात बिल्कुल गलत है कि अमुक मनुष्यने कोई नई बात बनाई था कोई नया धर्म बनाया *। आदि सृष्टिमे जो ज्ञान

* एग्लो जाक्सन डैमिंग कहता है कि 'वास्तवमें कभी कोई भी मनुष्य (मूलप्रकाशक) 'ओरिजिनेटर' नहीं कहला सकता, क्योंकि जिस प्रकार नदियां आदि व समाप्त-

परमात्माने दिया था उसीका प्रकाश घूमघामकर लौटफेरकर दुनियोंमें फैलरहा है । ऋषियोंका इसीदशामें कौल रहा है कि–

'स एष पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्'–पात० योगसूत्र । वह पूर्वजोंका भी गुरु है जो कालके फेरमें नहीं वह आता अर्थात् परमेश्वरहै । दूसरे ऋषि कहतेहैं कि–

'शास्त्रयोनित्वात्' वेदान्तसूत्र.

शास्त्रयोनि होनेसे उस परमात्मा की सिद्धि है, अर्थात् विना गुरुके शास्त्रज्ञान हो नहीं सकता और आदि सृष्टिमें कोई गुरु था नहीं, पर ज्ञान संसारमें देखतेहैं तो प्रश्न होताहै कि आदि पुरुषोंको ज्ञान कहाँसे हुआ ? इसका यह उत्तर है कि कोई ज्ञानदाता होना चाहिये और वह परमेश्वर है ।

जो ज्ञान ईश्वरका दिया हो और एक ही भाषाके द्वारा दियागया हो उसका ज्ञान और भाषाकी उद्देश्य भी महान और एक होना चाहिये ।

आवश्यकता

इस संसारमें आकर मनुष्य अपने पुरुषार्थसे सब प्रकारके सुखोंका आयोजन करनेपर भी जब बीमारी पुत्रविछोह कलह और अपनी मृत्युपर सोचताहै तो सब सुख होते हुए भी उसे महान् क्लेश होताहै । वह इस क्लेशका कारण ढूँढने लगताहै । ढूँढनेपर उसे केवल यही कारण मिलताहै कि न हम पैदा होते न दुःख पाते, अतः पैदा होना अथ च मरना यही सारे क्लेशोंका कारण है । इस सिद्धान्तके बाद वह जानना चाहता है कि मैं कौन हूं, यहां क्यों पैदा हुआ किसने पैदा किया मरनेके बाद क्या होगा ? अन्तमें उसे परमात्माका ज्ञान होताहै और वह निश्चय करताहै कि जबतक उस अविनाशी परमपिताको प्राप्त न होऊँ, मोक्ष प्राप्त न करूं तबतक ये दुःख दूर नहीं हो सकते । बस एक मात्र

–सिद्धान्त एकरूप है, और उसमें वृद्धि व ह्रास कभी नहीं होना उसी प्रकार वैज्ञानिकसिद्धान्तों या परिभाषाओंमें भी कभी वृद्धि या ह्रास नहीं हो सकता । हारमोनिआ भाग५ पृष्ठ ७३

इस सुखके प्राप्त करनेके लिये और दूसरोंको इसके योग्य बनानेके लिये उन्हें भाषा और ज्ञानकी आवश्यकता होतीहै क्योंकि–

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'

मनुष्यमात्रका यही एक प्रयोजन पायाजाताहै, अतः इसी एक प्रयोजनकी सिद्धिके लिये परमात्माने मनुष्योंको ज्ञान और भाषा दी है। जिस प्रकार मन का एक प्रयोजन है उसी प्रकार ज्ञान और भाषा भी एक है।

पाठक ! आपने आरम्भसे लेकर यहांतक देखा कि मनुष्य स्वयं कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता और न स्वयं कोई भाषा ही बना सकताहै। अतः ये दोनों पदार्थ ईश्वरदत्त हैं। दोनों अनेक नहीं किन्तु एक है और एक दूसरेमें व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रखतेहैं। जहां ज्ञान है वहां शब्द है और जहां शब्द है वहां ज्ञान है। यह नियम सार्वभौम और व्यापक है। जब हम कोई ज्ञान किसीसे लेतेहैं तो उस ज्ञानके साथ शब्द भी आताहै। इसी प्रकार जब एक देशसे दूसरे देशको कोई ज्ञान जाताहै तो वह शब्दोंकीही थैलियोंमें बन्द करके भेजाजाता है। यदि आप योरोपसे कोई ज्ञान लाना चाहैं तो वह ज्ञान उस शब्द–थैलीमें बन्द होकर आयेगा, जिसकी सृष्टि उस ज्ञानके साथ२ वहीं हुई होगी। इससे यह भी समझमें आजाताहै कि अमुक देशमें अमुक ज्ञान अमुक शब्दके द्वारा गया है। यदि योरोप देशमें हम 'स्विंग'='सिविंग' सीना शब्द पातेहैं तो हम कह सकतेहैं कि योरोपमें सीनेकी विद्या भारतसे गई है, क्योंकि यहाँ 'सिव' धातु सीनेके अर्थमें मौजूद है। इसी प्रकार यदि हम किसी दूसरे देशमें अपने देशका कोई ज्ञान पावैं तो हमैं समझना चाहिये कि उसका वाची शब्द भी उस देशमें होगा। चाहे उसका रूप कैसा ही बिगडगया हो। जैसे यदि हम योरोपमें सभा सोसाइटी करते देखें तो कहना चाहिये कि उन्होंने यह ज्ञान हमसे सीखा। अच्छा तो इसके साथ शब्द कौन-सा गया ? ढूंढनेसे मालूम हुआ कि इसके साथ शब्द गया 'कमिटी'। कमिटी क्या है? यह 'समिति' का अपभ्रंश है। आज भी उसे 'सी' (रा) अक्ष-

रूपमें ही दिखतेहैं। इस प्रकारसे हम पृथिवीभरके शब्दों और ज्ञानोंके सम्बन्धको लगाकर जब देखतेहैं तो पता लगताहै कि यह सारा ज्ञान और सारी भाषा किसी एक ही ज्ञान और भाषाकी बिगड़ी हुई सूरत है। किन्तु अब प्रश्न यह है कि वह आदि ज्ञान तथा आदि भाषा कौन है?

॥ पहिला प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ओ३म् ।

अक्षरविज्ञान

दूसरा प्रकरण २.

पहले प्रकरणके अन्तमें कहाजा चुका है कि मूलज्ञान और मूलभाषाका पता लगानेके दो ही मार्ग है । एक तो शब्दोंके मिलानसे ज्ञानका जानना, दूसरे ज्ञानके मिलानसे शब्दोंका होना, अर्थात् यदि शब्द मिलजावे तो ज्ञानका अनुमान करलियाजाय और जब ज्ञान मिलजाय तो शब्दका अनुमान करलियाजाय । क्योंकि यह तो निर्विवाद है ही कि जिसका ज्ञान होताहै उसीका शब्द होताहै, कारण कि ज्ञान और शब्द सदैव एक साथ रहतेहैं ।

आदि ज्ञान और आदि भाषाका पता.

किन्तु समयके फेरसे जिस प्रकार भाषा अपभ्रष्ट होगई है उसी प्रकार ज्ञान भी टेढामेटा होगया है । इसके अतिरिक्त कुछ शब्द और ज्ञान लोगोंने बना भी लिया है, जैसा कि भूगोलके बारेमें हुआ है । तथापि उसके प्राप्त करनेका मार्ग सीधा और सरल है ।

'भूगोल' शब्द 'ग्लोब' बनकर जब योरोप गया था तब वहां भी पृथिवी गोल मानीजाती थी और यहां भी, किन्तु कुछ समयके बाद दोनों देशोंमें 'भूगोल' और 'ग्लोब' (ग्लोबू = गोलबू अर्थात् 'गोलभू') शब्द रहते हुये भी लोग पृथिवीको नाना प्रकारकी मानने लगे । इसी प्रकार 'गोमेध' शब्द जन्द भाषामें 'गोमेज' बना और भारतवर्षसे लेकर ईरानतक 'अन्न व हि गौ' अर्थात् 'अन्न' वा 'पृथिवी' अर्थ रखता रहा । पारसीधर्म ग्रन्थोंमें भी 'गोमेज' का अर्थ 'अन्न उत्पन्न करनेके योग्य पृथिवी बनाना' लिखा है, पर योरोपके विद्वान् और भारतवर्षके पुराने शास्त्री एकस्वरसे 'गोमेध' का अर्थ 'गोवध' करतेहैं । इस प्रकारके परिवर्तन हमे बतला रहे हैं कि कभी कभी लोगोंके भ्रमात्मक विचारों और अशुद्ध उच्चारणोंसे भी महा अन्धकार फैलाहै और भाषा बिगडी है ।

यद्यपि मूलभाषाके बिगाड़ने तथा नई भाषाके रचनेमें कोई कसर बाकी नहीं रक्खीगयी और न पवित्र ज्ञानोंको अज्ञान बनानेमें लोग चूके हैं तथापि ढूंढनेसे संसारके ज्ञान और भाषा दोनों गवाही देनेको तैयार हैं कि हम किसकी सन्तति हैं। अतः हम पहिले देखना चाहतेहैं कि संसारमें समस्त ज्ञान और धर्म कहाँसे गये? ज्ञान और धर्मकी उत्पत्ति कहाँसे हुई?

यद्यपि ज्ञानकी सीमा बहुत लम्बी चौड़ी है तथापि हम ज्ञानके सबसे बड़े छ विभाग करतेहैं और देखतेहैं कि इन छओंका उद्गम-स्थान कहां है?

क्या सारे ज्ञानोंकी उत्पत्ति वेदोंसे हुई?

(१) ज्योतिष और भूगोल शास्त्रका आविष्कार कहाँ हुआ और संसारमें कहाँसे फैला?

(२) वैद्यकशास्त्रका मूलप्रचारक कौनसा देश है?

(३) राजनीति और समाजनीति (वर्णाश्रम) का आविष्कर्ता कौन है?

(४) सारे धर्मोंका उद्गम क्या है और कहाँसे सारे धर्म फैले हैं?

(५) रंग और मणि मुक्ता आदि ऊँचे दर्जेके व्यापारके आविष्कारक और नाविक ज्ञानके आविष्कर्ता कौन है?

(६) जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नर्क, मोक्ष आदि और योगादि गुप्त क्रियाओं और शक्तियोंके आचार्य कौन हैं?

आप लोग यदि उपरोक्त प्रश्नोंकी गहराईमें जाकर उत्तर सोचेंगे तो इसके अन्दर दो बड़ी चमत्कारिक बातें मिलेंगी। एक तो यह कि बिना किसीके सहारा जिस जातिने इन विद्याओंका आविष्कार किया होगा, निस्सन्देह वह मूल जाति होगी, दूसरे यह कि बिना इन विद्याओंके कोई भी जाति दूर देशोंका सफर नहीं कर सकती। आज जो संसारमें अनेकों जातियाँ बसतीहैं उन मूलस्थानसे चली होंगी तो जरूर उपरोक्त विद्याओंके साथ चली होंगी।*

क्योंकि:—

* ज्योतिष भूगोल खगोल और नाविकविद्या तथा वैद्यकके साधारण नियम जानने जरूर जानता था, अन्यथा समुद्रपारकी यात्रा कैसे कर सकता।

(१) ज्योतिषके विना ध्रुव, सप्तर्षि, आकाशगंगा आदि अनेक तारासमूह रात्रिको जहाजोंका रास्ता नहीं बतला सकते ।

(२) भूगोल, पृथिवीके समुद्रीय और थलीय भागोंकी सूचना देताहै ।

(३) वैद्यक भिन्नभिन्न देशोंके जल वायु आहार विहारकी सुव्यवस्था रखनेके लिये ज़रूरी है ।

(४) नाविक ज्ञानके विना समुद्रके पार होहीं नहीं सकते, जब उपरोक्त अनेक विद्याओंके अन्तर्गत इन चार विद्याओंके विना हिमालयसे अफरीका, अमरीका और अस्ट्रेलियामें जाकर लोग आबाद नहीं हो सकते तो अवश्य मानना पडेगा कि जिससे उन्होंने ये विद्यायें सीखी थीं उन्हींके पाससे उन्हीं की भाषा बोलते हुये (उन्हींके भाई) ये अनेक स्थानोंमे गये । अब यदि हम इस बातका पता लगादें कि उपरोक्त विद्याओंके आविष्कर्ता कौन हैं तो सिद्ध होजायगा कि संसारभरकी भाषा कौन थी । इन विद्याओंके आविष्कर्ताओंके बारेमें योरोपके विद्वानोंकी क्या राय है, यहां हम केवल उनकी अन्तिम राय और पुस्तकोंके तथा रचयिताओंके नाम लिखे देतेहैं ।

(१) "ज्योतिषशास्त्र, जिसमें भूगोल खगोल दोनों शामिल हैं, रेखा अङ्क और बीजगणितके साथ साथ आर्योंसे ही सबने सीखा" देखो । हिस्ट्री आफ इण्डिया एलफिन्स्टन साहब रचित और 'एनडिसकोर्सेस' (एस. डब्ल्यू जोन्स रचित) तथा 'एशियाटिक रिसर्चेज भाग १२' पृष्ठ १८४ और कोलब्रूक डिसर्शन्स.

(२) 'वैद्यकशास्त्र भी संसारने आर्योंसे ही सीखा' देखो 'हिस्ट्री आफ मेडिकल साइंस' एच. एच. टी-एस गोंडालरचित-

(३) 'मनुका कानून संसारमें सबसे पुराना कानून है उसीसे सबने समाजशास्त्र सीखा' देखो 'इफटंस इंस्टिटिक्स आफ हिन्दूला, सर डब्ल्यू जोंस रचित और हिस्ट्री आफ इण्डिया एलफिन्स्टन साहब रचित-

(४) 'सारे धर्मोंका उद्गम वेद है' देखो फाउनटेनहेड आफ रिलीजन जी. पी. एम-ए. रचित- .

(५) 'रंग बनाना रंगना और छापना सबसे पहिले हिन्दुओंने ही आ-

निष्कृत किया था' देखो इन्टोनियो सिनसोन रचित 'प्रिन्टिंग आफ काटन फ़ेब्रिक्स'–(छीट छपनेका इतिहासवाला प्रकरण) और 'मणि मुक्ताके विषयमें' देखो प्रेशियस स्टोन्स एण्ड जेम्स एडविन डब्ल्यू स्ट्रीटर एफ. आर. जी. एस. एम ए. आई. रचित इसी प्रकार 'नाविकविद्या भी आर्योंकी ही ईजाद है * (देखो 'इण्डियन नेविगेशन')

(६) पारलौकिक विषयोंमें आर्योंकी उच्च स्थितिका वर्णन करते हुये मैक्समूलरने 'वॉट डज इण्डिया टीच अस' नामी ग्रन्थमें लिखा है कि if there is any paradise in the world I should point out to India अर्थात् यदि पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है तो मैं कहूँगा कि वह 'भारतवर्षहै'

जब यह सिद्ध होगया कि उक्त समस्त विद्यायें आर्योंकी ही आविष्कार कीहुई हैं + तो अब यह बात निर्विवाद होगई कि जगत्भरकी भाषा आर्योंकी ही भाषाका अपभ्रंश है, क्योंकि विद्या बिना भाषा अर्थात् ज्ञान (अर्थ) बिना शब्दके दूरदेश जा ही नहीं सकता ।

योरोपीय ऐतिहासिक बहुधा कहा करतेहैं कि अमुक सनमें अमुक विद्या भारतसे अमुक देशको गई । इस विषयमें यह बात ध्यान रखने योग्य है

---

* आर्योंकी नाविक विद्या जगप्रसिद्ध है अगरेजोंका 'नॉविगेशन शब्द ही नाविक' शब्दसे लेकर बनाया गया है । संसारकी सबसे प्राचीन पुस्तक वेदमें लिखा है कि.–

वेदा यो वीना पदमन्तारिक्षण पतनाम्
वेद ना समुद्रिय (ऋग्वेद)

अर्थात् (यो) जो (वीना) पक्षियों बादलों तारागणादि गति करनेवाले पदार्थोंकी (अन्तरिक्षेण पतनाम्) अन्तरिक्षमें चलनेवाली (पद वेद) कलाको जानता है (वेद नावः समुद्रिय) वही समुद्रीय नाविक विद्याको जानताहै । यहां यह वेद मन्त्र खगोल, भूगोल और नाविक रचनाका उपदेश पक्षियों तथा तारागणोंके उदाहरण देकर समझाता है और एक प्रकारसे विमानका भी इशारह करता है ।

+ आर्योंने विद्यायें कब आविष्कृत कीं यदि यह जानना चाहते हो तो आर्ष ग्रन्थोंको पढ़ो सूर्य सिद्धान्त बने हुए२१६५००० वर्ष होते हैं । वहां भी लिखा है कि यह ज्ञान वे॰ सीखा गया है इसी तरह ऋषियोंके प्रत्येक ग्रन्थमें लिखा है कि हमने जो कुछ सीखा है वह आदि सृष्टिमें दिये हुये ईश्वरीय उपदेशरूपी वेदोंसे सीखा है । हम केवल उस ज्ञानके प्रचारकहैं । इससे ज्ञात होता है कि सारा ज्ञान आदि सृष्टिमें ही मिला ।

कि इन सनोंकी हद इस अखीर चालान (डिस्पैच) की बाबत है, अन्यथा इस प्रकारके अनेकों चालान (धर्मप्रचार और विद्याप्रचार) इस देशसे पुलस्त्य और व्यास आदिके समयोंमें होते रहे हैं और बौद्धोंके समयोंतकजारी थे। क्योंकि यहाके आदि राजा मनुका यह कानून था कि 'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः (मनुस्मृति । सारे देशोंके लोग इस देशनिवासियोंसे शिक्षा ग्रहण करें। उपरोक्त विद्याओंके बारेमें एक और योरोपीय विद्वान्की राय सुनोः—

'जेकालियट' कहताहै कि 'मैं अपने ज्ञानके नेत्रोंसे देखरहाहूँ कि आर्यावर्त अपनी राजनीति, अपने सरकार, अपने आचार और धर्म, मिश्र ईरान यूनान और रोमको देरहा है, । 'मैं जैमिनि और व्यासको सुकरात और अफलातूनसे पहिले पाताहूँ' । "प्राचीन भारतके महत्वका अनुभव प्राप्त करनेके लिये योरोपमें प्राप्त कियाहुआ विज्ञान और अनुभव किसी कामका नहीं इस लिये हमें आर्यावर्तका प्राचीन महत्व जाननेके लिये ऐसा यत्न करना चाहिये जैसा कि एक बच्चा नये सिरेसे पाठ पढता है ।" आगे चलकर जेकालियट यह सिद्ध करनेके लिये कि ज्ञानके साथ साथ भाषा भी जातीहै, पृथिवीके कुछ देशोंके नाम इस प्रकार बतलाताहै और कहताहै कि यह सब संस्कृतके नाम हैं।

नाम	संस्कृत
स्पार्टन	स्पर्द्धा (जिसके अर्थ मुकाबला करनेके हैं)
स्वीडन	सुयोद्ध । (सिपाही)
स्कौण्डिनेविया	स्कन्धनिवासी
नार्वे	नारावाज (मल्लाहोंका देश)
ओडन	योधन (योद्धा)
बाल्टिक	बालटिक (वीरोंका समुद्र)

"निदान हम 'मिस्टर वाइराण्ट' से सहमत हैं जो कहतेहैं कि मिश्री भारतवासी यूनानी और इटलीवाले वास्तवमें किसी एक ही केन्द्रसे बिखरे होंगे और 'यही लोग अपना धर्म आचार और विज्ञान

सियोंसे सम्बन्ध रखतेहैं, जिससे हम कह सकतेहैं कि यातो ये जातियां हिन्दुओंकी बस्तियां होंगी या उनमेसे किसीने सबको बसाया होगा । यह हम स्पष्ट रूपसे कह सकतेहैं कि वे सब ऐक ही केन्द्रसे आये होंगे" "मिश्रमें दो प्रकारके अक्षर थे एक लौकिक, जो भारतके प्रान्तीय अक्षरोंसे मिलतेहैं, दूसरे वैदिक जो देवनागरी अर्थात् विशेष कर संस्कृतके अक्षरोंसे मिलतेहै । इङ्गलेंडके प्राचीन पुरोहित ड्रूइट और भारतके ब्राह्मण एक ही हैं । इसी प्रकारकी सब बातें मिलकर सिद्ध करतीहैं कि भारतवासी और चीनी भी वास्तवमें एकहीहैं" (एशियाटिक रिसर्चेज भाग २ पृ. ३७९)

इसी प्रकार सभी धर्म जो इस समय पृथिवीपर फैले हैं, वेदधर्मके उसी प्रकार अपभ्रंश हैं जिस प्रकार भाषा । इस समय दुनियाके बडे२ छे धर्म पृथ्वीपर फैलेहैं । वेदधर्म, जन्दधर्म, मूसाई धर्म बौद्धधर्म, ईसाई धर्म और मुसलमानी धर्म । इन छे धर्मोंका मूल क्या है ? इस नकशेसे समझो ।

संसारके सब धर्मोंकी जड वेदधर्म अर्थात भारतवर्ष है

ईसाई
मुहम्मदी
मूसाई
वेद
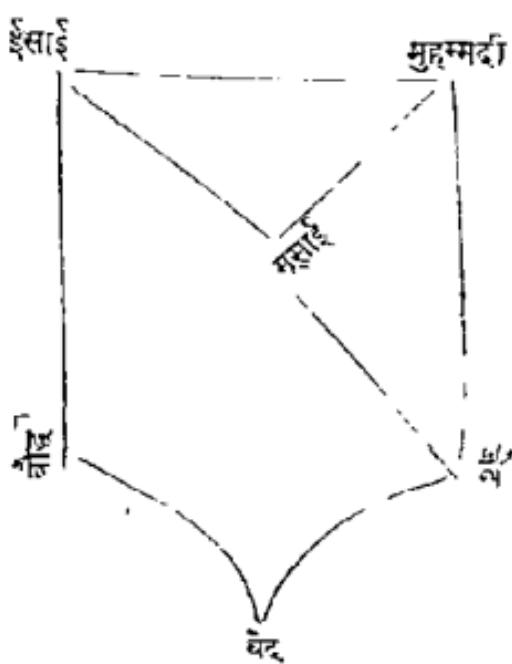
(जेंद) पारसीधर्मकी पुस्तक गाथामें लिखा है कि 'हमारा अथर्व वेदकाधर्म है' । मूसाई धर्म भी कबूल करताहै कि मैंने अपना धर्म पारसीधर्मसे लिया है, बौद्धधर्म 'पाचयमोंका प्रचार करताहै, जो वैदिक है' । ईसाई धर्म, मूसाई और बौद्धधर्मकी नकल है । इसी प्रकार मुहम्मदी धर्म पारसी, मूसाई और ईसाई धर्मके मेलसे बनाहै । और थोडीसी चटनी अद्वैतकी पडगई है, जिसमे मजेका 'लाइला इल्लिला'' बनगया है । (देखो फाउन्टेनहेड आफ रिलीजन)

कहनेका मतलब यह कि ज्ञान विज्ञान, कानून, कायदे, राजनीति आदि जितनी श्रौत स्मार्त (धार्मिक), सचाई हैं सारे संसारमे यहींसे फैली है और सबके मूलप्रचारक आर्य ऋषि हैं । इस विषयके देशी और विदेशी इतने प्रमाण हैं कि यदि सब उद्धृत किये जायँ तो एक पुस्तक बनजाय अतः हम लेखवृद्धि के कारण अधिक न लिखकर यहीं समाप्त करतेहैं ।

आर्यशिरोमणि ऋषियोंसे (जो सब विद्याओंके आविष्कर्ता हैं) जब हम पूछतेहैं कि भगवन्! आपने यह ज्ञान कहांसे सीखा ? तो समस्त ऋषि-मण्डली एकस्वर होकर कहतीहै कि—"हमने सारा ज्ञान वेदोंसे ही प्राप्त किया है" अतएव समस्त ज्ञानका उद्गम वेद हैं । वेदोंका और आर्यावर्तका स्वाभाविक सम्बन्ध है अतः कहना चाहिये कि सारा ज्ञान वेदों अर्थात् आर्यावर्तसे ही समस्त संसारमें फैला है ।

जब सभी ज्ञान यहांसे गया तो प्रश्न यह होताहै कि वह ज्ञान किन थैलियोंमें किन सन्दूकोंमें अर्थात् किन शब्दोंमें बन्द होकर गया ? क्या ज्ञान विना शब्दोंके जा सकताहै ? नहीं जा सकता । तो मानना पडेगा कि आर्यावर्तके ज्ञानके साथ अर्थात् वेदोंके ज्ञानके साथ, आर्यावर्तकी—(वेदोंकी) भाषामें ही बन्द होकर वह दुनियामें फैला और आर्यावर्तकी ही भाषासारे संसारमें फैली है ।

यद्यपि जिस प्रकार ज्ञान और धर्मका शुद्ध रूप बिगाड डाला गयाहै उसी प्रकार अथवा उससे भी अधिक भाषाका आकार भी नष्ट कियागया है तथापि जो चीज जैसी होती है अगमग होजानेपर भी वैसी ही रहतीहै ।

क्या समस्त भाषाओंकी जननी वेदभाषा है ?

पूर्व प्रकरणमें मनुष्योंके मूलस्थान और एक भाषाकी जांच करनेमें हमें जिस प्रकार कामयाबी हुई है उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक हमे इस विषयमें सफलता हुई है कि "संसारभरमें हर प्रकारका ज्ञान आर्यावर्तसे ही फैला है"। यद्यपि 'जहां २ ज्ञान तहां २ भाषा' इस न्यायसे यह बात अभी सिद्ध होगई है कि 'जब सारे संसारमें वेदोंसे ही ज्ञान फैला तो भाषा भी वेदोंसे ही फैली है' तथापि हम सबकी तसल्लीके लिये आगे चलकर दिखलातेहैं कि किस प्रकारसे, किनकिन प्रमाणोंसे हम वैदिक भाषाको आदिभाषा, मूल-भाषा ठहरातेहै और मानते हैं, किन्तु इसके पूर्व यह दिखलाते हैं कि, मूलभाषा बिगाडनेमे लोगोंने कितने कितने उपाय किये है। सबसे पहिले हम एक बिलकुल कल्पित भाषाका पता देतेहैं।

कृत्रिम भाषा-की सृष्टि

हमको पक्का प्रमाण मिला है कि अगले समयोंमें राजा लोग एक गुप्त (पोलिटिकल) भाषा बनालिया करते थे (जिसको उनके आद-मियोंके सिवा शत्रुदल न समझ सकता था) और उसको काममें लाते थे। इसी प्रकार दूसरा राजा भी द्वेष वश उससे भी भिन्न एक तीसरी भाषा रचलेता था। इस स्पर्धाका प्रभाव सीधी, उलटी और आडी आदि लिपियोंमे भी पडा। यहांतक कि रस्म रिवाज भी उलटे होगये। और बायें दहिने पर्दे तथा चोटी और डाढीकी पहिचान मुकरर होगई।

आज जिस प्रकार 'स्पेरेंटो' एक बिलकुल नयी भाषा उठ खडी हुई है और बडी शीघ्रतासे संसारमे फैल रही है तथा जिस प्रकार व्यापारियोंमे 'कोडवर्ड्स' (जिन्हें वे लोग गुप्तव्यापारके काममें लातेहैं) की भाषा बढरही है वैसी ही भाषाएँ, पूर्व समयमें भी आविष्कृत हुईं थीं और राजनैतिक विषयोंमें काम आती थीं। उदाहरणके लिये नीचेकी दो घटनाये देखिये। पहिली यह कि:—

विदुरका भेजाहुआ खनक युधिष्ठिरसे कहताहै कि 'दुर्योधनने दुरोच-नको आज्ञा देदी है कि कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको लाक्षा भवनमें अग्नि देदे अतः क्या आज्ञा है। मैं विदुरका भेजा हुआ हूँ या नहीं इसके लिये आपको

याद दिलाताहूँ कि "किञ्चित् विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि*पाण्डव" तथा च 'तत्तथेत्यु' क्तमेतद्विश्वासकारणम्" हे पाण्डव ! आपको विदुरने म्लेच्छभाषामें कुछ कहा था, जिसके उत्तरमें आपने 'तत्तथेति' (बहुत अच्छा) ऐसा आदेश किया था । मेरे दूत होनेमें यही प्रमाण है ।' यहां राजनीतिविषयमें कृत्रिम भाषाका काममें लाना पाया जाताहै । दूसरी यह कि सीताके पास पहुँचा हुआ हनुमान् सोचताहै कि "यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् । रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति" यदि मैं द्विजातियोंकी भाँति संस्कृतभाषामें बोलूं तो रावण·········और सीता भयभीत होजायँगी ।" इससे भी झलकताहै कि प्रचलित भाषाके अतिरिक्त कोई गुप्त भाषा और थी । और नीतिविषयमें ही उस गुप्त भाषाकी जुरूरत होती थी ।

ऐसी ऐसी मनमानी भाषा बनालेनेके अतिरिक्त समय २ पर लोगोंने नवीन २ शब्द भी तोड मडोरकर रचलिये हैं । योरोपकी भाषायें आजकल इस विषयमें बडी ही सर्पट जारही हैं । नया नाम रखनेमें जरा भी सकोच नहीं है । डाक्टरीमें एक हड्डीका नाम 'हीरालाल बोन,' रख दिया गया है और 'मेस्मरेजम' तो 'मेस्मरसाहब' के नामसे ही मशहूर है । रीठेको सोपनट अर्थात् साबुनकी सुपारी नाम रखकर भाषाज्ञानियोंने बडी ही मनोरञ्जकता करदी है । उधर मूलशब्दोंको अपभ्रष्ट करनेमें प्रत्येक देशके लोगोंने कहाँतक निष्ठुरता की है, वह भी एक दो उदाहरणोंसे दिखलाये देतेहैं ।

(१) फारसीका शब्द 'हजार' 'सहस्र' का अपभ्रंश है । क्योंकि फारसवाले 'स' का 'ह' और 'ह' का 'ज' कर डालते हैं जैसे 'सप्त' का 'हफ्त' और 'मास' का 'माह' 'बाहु' का 'बाजू' और 'जिह्वा' का 'हिज्वा' अर्थात 'जबाँ' बनाडाला गयाहै । इसी तरह 'चक्र' का 'चर्ख' भी रच लिया गया है ।

(२) अंग्रेजीका 'कर्व' जो यथार्थमें संस्कृतका 'वक्र' है, किस तरह-

---

*पाणिनि अपने धातुपाठमें कहते हैं कि 'म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे ' अर्थात् अव्यक्त शब्द को म्लेच्छ भाषा कहते हैं अव्यक्त–भाषा गुप्त भाषाको कहते हैं । ऐसी भाषा मनुके समयमें भी थी लिखा है " म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे तेदस्यवः स्मृताः "

गीसे लँगडा कियागया है। सबसे बडा अत्याचार चीनवालोंने किया है।
उनका नमूना भी देखिये।

(३) 'वक्षु' संस्कृतशब्द है और एक नदीका नाम है, इसको कालिदा-
सने 'रघुवंश' में लिखा है। उसी शब्दको ह्युयेनसांग नामक चीनी यात्रीने
बिगाडकर 'फोचू' करदियाहै। चीनी लोग संस्कृतके 'नक्षत्रेयुङ' को 'नेफो-
टिपोकुलो' कहतेहैं।

(४) इसी तरह अरबीवालोंने 'चरक' सुश्रुत और 'निदान' को 'सरक'
'ससरस' और 'बेदान' करडाला है।

अब बतलाइये, जब मूलभाषापर इस प्रकार कुल्हाडा चले, इस प्रकार
उसकी गर्दन मरोडी जाय, जार शब्द उसकी गोदमें इस प्रकार रक्खे जाँय
और बिल्कुल नईनई भाषायें सौतकी तरह उसका सर्वस्व हरण करलें तो भला
उसका पता जल्दीसे कैसे लग सकताहै ? पर तलाश करनेवाले भी गजबके
पुतले होतेहैं। हजार हाथ नीचे गडी हुई जमीनकी चीजको भी उखाड लेते
हैं। आज वही कौशल आप मूलभाषाके विषयमें भी देखेंगे।

महाशय, 'जेकालियटने जिस प्रकार स्वीडन आदि देशोंके नाम सुयोधन
बतलाया है उसी प्रकार ग्रीस (यूनान) देशके सारे भौगोलिक शब्द
(Geographical terms) संस्कृतके हैं, इस बात को 'इण्डियाइनग्रीस'
नामी पुस्तकमें महाशय 'पोकाक' ने दिखलायाहै, तथा ईरानमें शहरों
और नदियोंके नाम बिलकुल वैसे ही संस्कृतमें रक्खेगये हैं, जैसे
भारतवर्षमें हैं। मैक्समूलर कहतेहैं कि 'वहा (ईरानमें) काशी और भूपाल
नामके शहर हैं और सूर्य नामकी नदी है'। तात्पर्य यह कि पृथ्वीभरमें
वेदोंके शब्द भी वैसे ही पाये जातेहैं जिस प्रकार धर्मनीति और विज्ञान
पायाजाता है। अत —

आगे चलकर हम संसारकी बडी बडी सात भाषाओंके शब्दोंकी एक
विस्तृत सूची देते हैं, जिससे किसीको शङ्का न रहे कि संस्कृत ही सब
भाषाओंकी माता नहीं है, किन्तु पूर्व इसके, आपके मनोरञ्जनार्थ एक वैज्ञा-
निक जाच द्वारा सिद्ध करतेहैं कि संसारकी सब भाषायें वेदभाषासे ही निकली
हैं, क्योंकि यह तो पहिले सिद्ध हो ही गया है कि एक ही स्थानमें पैदा

होनेसे मूलपुरुषोंकी भाषा सभ्यता, आचार, नीति और धर्म एक ही था और इसीके साथ साथ उनका रूप (आकृति) और वर्ण (रंग) भी एक ही था। *

आज इस समय दुनियामें चार रंग और चार रूपके आदमी पातेहैं, यथा:-

रंग (वर्ण)	रूप (आकृति)	देश
लाल	पतले	रेड इण्डियन (अमेरिका)
काले	मोटे	दक्षिणी (अफ्रिका आदि)
पीले	चौडे	चीन जापानादि
श्वेत	तंग (narrow)	यौरोपदेशीय

आप इन चारों रंगों और चारों रूपोंको एक करदें और देखें कितनी सुन्दर और कांतिशाली मूर्ति बनती है। यह मूर्ति उसी रंग रूपके सदृश होगी, जो कशमीरसे लेकर अवधके हिमालय रेंजपर बसनेवाले भारतवासियोंमें पायाजाताहै और यही आदि सृष्टिके मनुष्योंकी आकृति वा रूप होना चाहिये। यद्यपि मूल प्रकारका सत्यरूप और रंग बहुत दिन होनेके कारण नहीं रह सकता तथापि अनुमान करनेके लिये आज कशमीर सारे जगत्को निदर्श कर रहाहै। इसी प्रकार यदि संसार भरकी सब भाषायें एकमें मिलादी जाय तो वही भाषा बन जायगी, जो मूल भाषा थी और उस भाषासे झट मिल जायगी, जो भारतवासी बोलतेहैं। भारतवासी तो वैदिक भाषाकाही जरासा बिगडा हुआ अपभ्रंश बोलते हैं न ! क्योंकि भारतवासियोंके रंगरूप भाषामें अधिक फेरफार नहीं हुआ। फेरफार इस लिये नहीं हुआ कि ये अपनी मौरूसी जन्मभूमिको छोडकर बडे बडे कष्ट सहने पर भी आदि सृष्टिसे लेकर आजतक कहीं नहीं गये। किसी अन्यधर्मको नहीं माना, किसी दूसरी भाषाका अनुकरण नहीं किया किन्तु सदैव सारे संसारको अपना ज्ञान सिखलाते रहे हैं।

इस युक्तिसे (नहीं नहीं सच्ची घटनासे) आप इस परिणामपर पहुंच गये होंगे कि जब मूल पुरुष एकही स्थानमें पैदा हुए तो उनकी भाषाभी एकही थी। आज जो संसारमें सैकडों भाषायें पाईजाती हैं उसी एक कीही शाखा

* 'अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजा; सृष्टास्तथा प्रभो। एकवर्ण सभा भाषा एकरूपश्च सर्वश.' (वाल्मीकि रामायण)

और उपशाखा प्रशाखा हैं। सबमें परिवर्त्तन हुआहै किन्तु वेद भाषाको भारत-वासियोंने किन किन कठिन नियमोंको बनाकर जीतारक्खा है, जिसे संस्कृतके पढनेवाले ही जानतेहैं। घन जटावली लगाकर कण्ठस्थ वेद पाठ इसी अभिप्रायसे था कि कहीं यह कुदरती भाषा भ्रष्ट न हो जाय। एक स्वरकी अशुद्धिसे नर्कमें जानेका कानून विद्यमान है इसी लिये वह मूलभाषा संसारमें नहीं किन्तु अब चार पुस्तकोंमें सुरक्षित है। जिन लोगोंका ख्यालहै कि वेद भाषा जेन्द भाषासे बहुत मिलतीहै अतएव जेंदभाषा वेद-भाषाका एकही कालहै वे शराबके नशेमेंहैं। जेन्द और वेदके पढनेसे जो अन्तर सुनाई पडताहै, ठीक वैसाही है जैसा हिन्दी और उर्दूके सुननेसे पायाजाता है। जेंदमें जो अपभ्रष्टता मौजूदहै, जिसे आप जेंदकी लिस्टमें देखेंगे, वह लाखो वर्षमें हो पाई होगी। इससे सिद्धहै कि वैदिक भाषाही मूल भाषाहै। वेदोंको योरोपीय विद्वान संसारमें सबसे पुरानी पुस्तक मानचुकेहैं, साथही यह भी मान चुकेहैं कि जो कुछ ज्ञान संसारमें फैला है वह भारत-वर्षके ऋषियोंसे ही फैलाहै इधर भारतवर्षके ऋषि कहतेहैं कि हमने जो कुछ सीखा है वेदोंसे ही सीखाहै। इस बेलाग और सच्ची साक्षी तथा उपरोक्त सम्पूर्ण वर्णनसे मजबूर होकर हमे भी मानना पडताहै कि वेद भाषा ही आदि भाषाहै किन्तु—

पाठक! आप निराश न हों इतनाही समझाकर हम चुप न रहेंगे। हम आपको यह दिखलाकर ही छोडेंगे कि संसारकी सब भाषायें वैदिकभाषासे अवश्य निकलीहैं।

लीजिये, देखिये ये सात बडी २ संसारकी भाषायें आपके सामनेहै, जो प्रबलतासे बतला रही है कि हमारी माता संस्कृत है। और हम उसकी छुटी लगडी बेटी, पोतीहैं। सुनिये—

योरोपके विद्वानोंने बडी २ भाषाओंके दो भेद किये हैं जिनके एक भेदमें आर्यभाषायें और दूसरे भेदमें सैमिटिक भाषायें कहीजाती हैं। आर्यभाषाकी प्रधान भाषायें संस्कृत, जेंद, फारसी और अँगरेजीहै। सेमिटिकभाषाओंमें सबसे

* अँगरेजी योरोपकी सब भाषाओंसे बनी है मानो इसके आजानेसे योरोपकी सब भाषायें आजाती है।

प्रधान तथा विख्यात 'अरबी' तथा 'हिब्रू' भाषा है। इन दो आर्य और सेमिटिक भेदोंके अतिरिक्त एक तुरानी शाखा है जिसमें चीना तुर्की आदि भाषायें समझी जातीहैं और जिसकी शाखायें जापानी तथा द्राविडी आदि भाषायें है जिन्हें भारतवर्षके कोल भीलोंसे लेकर मद्रास प्रान्त, लंका और आस्ट्रेलियातकके लोग बोलतेहैं किन्तु यह शाखा आर्य और सेमिटिक दोनोंसे निकली हुई ज्ञात होतीहै। इन तीन शाखाओंके अतिरिक्त अफरीका और अमरीकाके मूल वासियोंकी दो भाषायें और हैं, जिनके बारेमें अभी ढूंढ तलाश जारी है। इनमेंसे अफरीका अन्तर्गत मिश्र देशकी भाषाकी जांच होचुकी है और जो आनन्दरूपी नतीजा निकला है वह हम एक दूसरे विद्वानके मुंहसे कहलाना चाहतेहैं। यथा,—

'मनुष्यके विचारोंका इतिहास भाषाकी सहायतासे शब्दोंमें भराहुआ है। इसलिये यदि भाषाके प्राचीन गृहमें हमारा प्रवेश हो तो हम मनुष्यके बिलकुल प्राचीन विचारोंको अच्छे प्रकार जान सकेंगे' 'संसारमें जितनी भाषायें प्रचलित हैं, सब आर्य और सेमिटिक भाषाओंके अन्तर्गत हैं' 'अफ्रिकाकी भाषाओंमें इजिप्ट अर्थात् मिश्रकी प्राचीन भाषाका सम्बन्ध आर्यभाषासे है अथवा सेमिटिक भाषासे इस बातका भी अबतक भाषातत्ववेत्ताओंने ठीक ठीक निर्णय नहीं कर पाया, किन्तु मिश्रकी भाषाका व्याकरण, सेमिटिक भाषाके व्याकरणसे मिलताहै और धातु आर्यभाषाकी धातुओंसे कुछ कुछ मिलतेहैं इससे लोग अनुमान करतेहैं कि आरम्भमें आर्य और सेमिटिक भाषायें एक थीं। संस्कृत और वेदोंके अध्ययनसे अब यह बात सिद्ध होती आतीहै कि वेद सबसे प्राचीन हैं। हम वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान समझतेहैं। सृष्टिकी उत्पत्तिके साथ ही यह ज्ञान हमें दियागया है अतएव जो वेदोंकी भाषा है वही आर्यभाषा किसी समय सारे संसारकी भाषा होनी चाहिये' देखो 'भाषा' नामका निबन्ध *

* यह 'भाषा' नामका निबन्ध नागरीप्रचारिणी लेखमाला के नामसे काशीनागरीप्रचारिणी सभाने ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मासे लिखाकर प्रकाशित किया है। लेखक महोदयने स्वीकार किया है कि हमने यह निबन्ध मैक्समूलरकृत 'नैचरल रिलीजन' और 'फिजिकल रिलीजन' नामी ग्रन्थोंके आधारपर लिखा है।

अब रही अमेरिका देशकी भाषाकी बात, सो अमरीकाके मूलनिवासियोंको अँगरेज लोग 'रेड इण्डियन' अर्थात् लाल हिन्दू कहते ही हैं, वे निस्सन्देह भारतवर्षसे घनिष्ट सम्बन्ध रखतेहैं। वे अपनेको सूर्यवंशी क्षत्री बतलातेहैं। और हर साल रामोत्सव करतेहैं, जिसको वे 'रामसीतव' कहते हैं। इससे ज्ञात होताहै कि उनकी भी भाषा संस्कृतकी ही अपभ्रंश शाखा है। क्योंकि वेतो 'इण्डियन' अर्थात् भारतवासी है ही।

इस प्रकारसे ये सात भाषाओंके (जो तीन बडे विभागोंकी शाखायें हैं, जान लेनेसे संसारकी समस्त भाषाओंका चूडान्त निर्णय होजाता है। इनके अतिरिक्त पृथिवीपर और २ छोटी २ भाषायें बोलीजातीहैं, जो जल्दीसे सुननेपर भिन्न मालूम होतीहैं किन्तु गौर करनेसे इन्ही सातके अन्तर्गत आजातीहैं। हमने उपरोक्त सात भाषाओंसे जाना है कि ये सातों भाषाये निस्सन्देह संस्कृतसे निकली हैं, क्योंकि पृथ्वीपर एशिया, योरोप, अफरीका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया ये छे बडेबडे विभाग हैं। इन छहोंमें निम्नोक्त सात भाषायें और इनकी बेटियें बोलीजातीहैं। ये सातों भाषायें वेदभाषाकी बेटियाँ, पोतियाँ हैं। इस लिये वेदकी ही भाषा मूल भाषा है, जिसका ज्वलन्त उदाहरण और प्रमाण यहासे आरम्भ होताहै।

---

१ पहिले अमेरिकाके यही स्वामी थे, अब योरोपियनोंने इनका देश ले लिया है, इनकी अब बुरी दशा है राजनैतिक अत्याचारोंके कारण इनका वंश बिल्कुल नाश हो चुका है। बहुत थोडे लोग जंगलोंमें पेट पालते हैं, किन्तु पहिले इनकी विद्या, सभ्यता इतनी बढी हुई थी कि जिसकी तारीफमें मैक्समूलरने एक लम्बा लेख लिखा है। इनका सम्बन्ध भारतसे हमेशा रहा है। वेद व्यास वहाँ बहुधा जाया करते थे। एक समयका वर्णन है कि पातालसे व्यासके भेजे हुए शुकदेव मुनि भारतवर्षको इस मार्गसे आये। महाभारत मोक्ष पर्व अध्याय ३२७ में लिखा है कि "मेरो हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः ॥ क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्ष मासदत्। स देशान्विविधान्पश्यश्चीनहूणनिषेवितान्" अर्थात् शुकदेवजी पाताल (अमेरिका) से रवाना होकर उत्तरमेरु (नार्थपोल) हरिवर्ष (योरप) हिमालय, चीन और हूण होतेहुए भारतवर्षको आये। इसी तरह उद्दालक मुनिका पातालमें रहना और उलोपीकी शादी अर्जुनसे होना यह सब बातें बतला रही हैं कि उनका भारतसे घनिष्ट सम्बन्ध था और उनकी भाषा आर्यभाषा भी और है।

पूर्व इसके कि हम समस्त भाषाओंके शब्दोंका संस्कृतसे मिलान करें, सब भाषाओंका उचित समझते हैं कि यहांपर सबके व्याकरणके स्थूल उदाहरण व्याकरण एक है दिखलादें, जिससे ज्ञात होजाय कि सबका व्याकरण एक है।

हमने ऊपर बतलाया है कि समस्त भाषायें तीन महाभागोंमें बॅटी हैं अर्थात् आर्य, सेमिटिक और तुरानी। आर्यमें जेंद लेटिन फारसी और संस्कृत है। सेमिटिकमें हिब्रु और अरबी है तथा तूरानीमें चीनी आदि भाषायें हैं।

यह बात निर्विवाद होचुकीहै कि प्राचीन भाषाओंमें लिंग और वचन तीन तीन होतेहैं। यह कौशल हम आर्य भाषाओंमे देखतेहैं।

१ आर्यभाषान्तर्गत—जेंद, लेटिन और संस्कृतमें लिङ्ग और वचन तीन तीन हैं।

२ सेमिटिक भाषान्तर्गत—'अरबी'में लिङ्ग और वचन तीन तीन हैं। अरबीमें जब पुल्लिङ्गका स्त्रीलिङ्ग बनातेहैं तब भी वही संस्कृतका कायदा काममें लातेहैं। यथा 'साहब'को 'साहिबा' 'मलक'को 'मलिका' 'मुकर्रम'को 'मुकर्रमा' (संस्कृतमें रामको रमा और कृष्णको कृष्णा।

३ तुरानी भेदके अन्तर्गत, यूराल, अल्टाइक, तुगसिक, मगोलिक, तुर्की तथा तिउगू आदि हैं। इनमेंसे एक शाखा 'सामोयेडिक' है जो चीनदेशान्तर्गत 'यैनिसी' तथा 'ओब'नदीके किनारे विस्तृत रूपसे बोली जातीहै। इस भाषामें संस्कृतकी भांति तीन वचन और आठ विभक्तियां हैं।

इस प्रकारसे भाषाके इन तीनों महा विभागोंके व्याकरणका एक बडा अंश मिलताहै अत सिद्ध है कि संसारकी सब भाषाओंका व्याकरण एक और वैदिकहै। अब संस्कृत शब्दोंके साथ सब भाषाओंके शब्दोंका मिलान करते-हैं किन्तु सबसे पहिले संस्कृतको वेदसे भी मिला लेतेहैं।

संस्कृतभाषा।

संस्कृतभाषा वेदभाषासे निकली है। संस्कृतका यह रूप कई रूप बदलनेपर मिलाहै। जो लोग समझतेहैं कि वेदभाषा और संस्कृतभाषामें कुछ अन्तर नहीं है वे गलतीपर हैं। पूर्व कालमें जब वैदिकभाषा बोली जाती थी उसी समय विद्वान् और मूर्खोंके संसर्ग तथा देशाटन और देशान्तर आदिके कारण उस भाषामें कई शाखायें बनगई थीं। इसका कारण यह है कि कुछ लोग गुरुकुलवास न करनेके कारण व्रात्य होगये थे। वे जातिसे पतित कियेगये थे और

विरोधी बनकर वैदिकोंसे लड़ने लगे थे। उनकी (अज्ञान् होनेके कारण) भाषा भी महा अपभ्रष्ट होगई थी और निम्नोक्त चार मार्गोंमें विभक्त होगई थी।

१ वह शाखा जिससे बिगड़कर चीन, जापानकी प्रशाखायें हुई हैं तथा जिसकी एक प्रशाखाका अपभ्रष्ट रूपमें द्रविड़भाषा है, जो मदरासेसे लेकर आस्ट्रेलिया तक फैली है।

२ वह शाखा जिसकी उपशाखायें संस्कृत, जेंद, लेटिन, अमेरिकन, आफ्रिकान्तर्गत मिश्रकी भाषायें हैं।

३ वह शाखा जिसकी उपशाखायें अरबी, हेब्रू आदि सेमिटिक शाखायें हैं।

४ स्पेरेंटो अथवा कोड वर्डोंकी भाँति वे स्वतन्त्र भाषायें, जो राजनैतिक और व्यापारिक कारणोंसे समय समयपर गुप्त भेदोंके लिये रच लीगईं थीं।

बस संसारमें इन्हीं चार मार्गोंसे भाषाधाराका प्रवाह बहा है, इन चारोंमेंसे नम्बर १ बहुत गौर करनेपर नं० २ के भीतर आजाताहै और नं० ३ का व्याकरण और धातु कभी मिलजातेहैं कभी कोसों दूर होजातेहैं। जितना भाग मिलजाताहै वह नं० २ का है, पर जितना नहीं मिलता (चाहे वह किसी भाषाके भीतर समायाहुआ हो) निस्सन्देह नम्बर ४ का है। इस तरहसे सभी शाखाओंका समावेश न० २ मे होजाताहै। इस नम्बर दोकी भाषाओंमेंसे संस्कृतभाषा अपने व्याकरण–विज्ञान और धात्वर्थ सम्बन्धके कारण वेदोंके बहुत करीब कहीजा सक्तीहै, पर वह ज्योंकी त्यों वेदभाषा नहीं है। इसका नमूना थोडासा नीचे देखो।

१ वेदभाषाका व्याकरण भिन्न है, इस विषयमें एक बहुत प्रसिद्ध प्रमाण देते हैं, संस्कृतमें अकारान्त पुंलिङ्ग द्विवचनमे 'औ' होताहै यथा 'रामौ' किन्तु वेदमे होताहै 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' हालां कि 'द्वौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ' होना चाहिये।

२ वेदोंमें एक लकार अधिक है, जिसे लेट लकार कहतेहैं, यह संस्कृतमें ही क्या दुनियाकी किसी भाषामें नहीं है।

३ वेदभाषामें एक अक्षर अधिक है, जो संस्कृत साहित्यमें नहीं है वह अक्षर 'ळ' है और 'अग्निमीळे पुरोहितम्' मन्त्रमें आता है ।

४ वेदभाषा अपना अर्थ स्वरोंसे पुष्ट करतीहै । यह कौशल संसारकी किसी भाषामें नहीं है । यथा—

आप यदि क्रोध करके किसीसे अपना रुपया माँगें और एक भिक्षुक भीखकी भाँति माँगे तो दोनों यद्यपि 'रुपया दो' —वा 'देव' अथवा केवल 'देव' कहेंगे, पर स्वरोंके फेरसे एकमें क्रोध—गर्व, दूसरेमें करुणा अर्थ भरा होगा । वेदके उदात्त अनुदात्त स्वरित, अपने सात भेदोंसे चुपचाप यही अर्थ कौशल करते रहते हैं ।

५ वेदोंके बहुतसे शब्द जिस अर्थमें आतेहैं संस्कृतमें नहीं आते यथा—

शब्द	संस्कृत अर्थ	वैदिक अर्थ
अहि	सर्प	मेघ
अद्रि	पहाड़	,,
गिरि	,,	,,
पर्वत	,,	,,
अश्मा	पाषाण	,,
ग्रावा	,,	,,
घृताची	वेश्या	रात्रि
वराह	शूकर	मेघ
धारा	जलप्रवाह	वाणी
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान्
गोतम	ऋषि	चन्द्रमा
अहिल्या	ऋषिपत्नी	रात्रि
इन्द्र	एक राजा	सूर्य
जमदग्नि	एक ऋषि	आँख

६ वेदोंके बहुतसे शब्द संस्कृतमें अपभ्रष्ट होगये हैं। यथा–

वेद	संस्कृत	अर्थ
स्याल (ऋ. १ । १०९ । २)	श्याल	साला
सूर्प (अ. ९ । ६ । १ । ६.)	शूर्प.	सूप
सूकर (ऋ. ७ । ५५ । ४)	शूकर	सुवर
वसिष्ठ (वेदोंमें सर्वत्र)	वशिष्ठ	उत्तम, स्वर्ग

इन शब्दोंके अतिरिक्त वैदिक कालमें बोले जानेवाले इन शब्दोंके सकारका भी शकार होगया है।

विकासते	विकाशते	विकसित होना
कोस	कोश	खजाना
सरल	शरल	एक वृक्षविशेष
वेस	वेश	बाना

वेदभाषा जहां अपने विकृत रूपसे जगत्व्यापी होकर इतने कालके बाद, अब भी संसारकी समस्त भाषाओंमें अपना दर्शन करारही है (जैसा कि आगेके महाकोशसे ज्ञात होगा) वहाँ अपने अन्दर भी अभी नमूनेके लिये ऐसे शब्द रक्षित कियेहुए है, जिनको देखकर प्रतीत होने लगताहै कि यह शब्द तो बाहरकासा मालूम होताहै। यथाः–'जर्फरी' 'तुर्भरी' 'जङ्गिड' 'वश' आदि। 'जर्फरी तुर्भरी' * शब्द अरबी फारसीकेसे ज्ञात होतेहैं 'जङ्गिड' मद्रास प्रान्तकासा शब्द ज्ञात होताहै और 'वश' चीनाई साँचेकासा शब्द है।

इस घटनासे अनुमान करना सहज है कि वैदिक कालमें जो भाषा बोली जाती थी उसमें ऐसे शब्द मौजूद थे जो सेमिटिक आदिकोंसे अधिक मिलजायँ और यह भी संभवसा होने लगताहै कि ऐसे ही ऐसे शब्दबाहुल्यने भाषाभेद भी करदिया हो, किन्तु आज उस समयकी भाषा केवल उतनी ही रहगई है, जितनेमें ईश्वरका दियाहुआ ज्ञान (वेद) है–बाकी व्यावहारिक

* 'जर्फरी' और 'तुर्भरी'=ऋग्वेद १०।१०६।६ में 'जङ्गिड' अथर्व १९ ३४।३ में और 'वश' अथर्व ४।१६।२ में देखो।

शब्द, जिनसे लोग अनेक व्यवहार चलाते थे, लुप्त होगये हैं, अथवा अन्य भाषाओंमें समागये हैं, तथापि जिस प्रकार पुत्रीको देखकर माताके पहिचाननेमें सुगमता होतीहै उसी प्रकार माताको देखकर पुत्री भी सहजमें ही ज्ञात होजातीहै । आज वेदभाषा अपना रूप सब भाषाओंमें और सबका रूप (जर्फरी, तुर्फरी आदि) अपने अन्दर दिखलाकर बडे जोरसे घोषणा करतीहै कि मैं आदिभाषा हूँ, मैं ही सब भाषाओंकी माता हूँ और मैं ही संसारमें ज्ञानके प्रकाश करनेवाली वेदविद्या हूँ ।

जन्दभाषा ।

दूसरे नम्बरपर जन्दावस्था * है । इसके बारेमें लोगोंने (जिनका नाम पढा लिखा है) बडा धोखा खाया है । उनका ख्याल है कि जिस प्रकार वैदिक धर्मकी बहुतसी बातें इसमें मिलतीहैं उसी प्रकार वेदोंके शब्द भी मिलतेहैं, अत वेद और जन्द सम कालीन हैं। पर हम कहतेहैं कि वेदोंके नहीं किन्तु संस्कृतके भी शुद्ध शब्द नहीं बल्कि उसके अपभ्रंशशब्द मिलतेहैं । वेदोंके शब्दोंमें और संस्कृतके शब्दोंमें बहुत अन्तर है । वेदोंकी भाषारचना विलक्षण है,जैसा कि पहिले कहा गया है । इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा आदि शब्द मिलनेसे भाषा एक नहीं हो सकती, यों तो वेदोंके हजारों शब्द संस्कृतमें मिलतेहैं तो क्या संस्कृत वेदभाषा होजायगी ? वैदिकधर्मके रहस्य भी गाथा आदिमें बहुत कुछ पायेजातेहैं,इससे भी उसका वेदपना नहीं सिद्ध होता क्योंकि वेदका सिद्धान्त तो बाइबिलमें भी पायाजाताहै । जहां कहागया है कि 'आदमको फल खानेको मना कियागया था पर उसने खाया और स्वर्गसे निकालागया' यह अक्षरशः 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' तयोरन्य' पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' का भावहै, जिसका मतलब यह है कि दो पक्षी वृक्षमें बैठे हैं, एक उसके फलको खाता और परिणाम भोगताहै, दूसरा साक्षी मात्र होकर देखताहै । ऐसे भावों अथवा शब्दोंके आजानेसे भाषाकी एकता अथवा दोनों भाषाओंका प्रचलनकाल

---

* 'जन्दावस्था' भाषाका नाम नहीं है किन्तु धर्मशास्त्रविशेषका नाम है पर प्रचलित होगया है इसीसे सुगमताके लिये हमने भी लिखा है ।

निर्णय नहीं होता। हम यहां जेन्द भाषा और वेदभाषाके दो प्रचलित महावरे देतेहैं। और दिखलातेहैं कि किस प्रकार जमीन आसमानका अन्तर है।

'विजग्रा' = 'द्विपादः'

'चथ्वारे जग्रा' = 'चतुष्पदः'

जन्दमें 'जधा' नहीं 'जग्रा' पद आताहै पर वेदमें 'पद' शब्द आताहै। यही हाल हम सर्वत्र देखतेहैं। इसके अतिरिक्त 'द्वि' का 'वि' 'जधा' का 'जग्रा' 'चत्वारि' का 'चथ्वारे' होनेमें क्या थोडे दिन लगे होंगे? हम तो कहतेहैं कि वेदसे क्या बल्कि संस्कृतमें निकलकर और न जाने कितने रूप बदलकर इस विलक्षण रूपके प्राप्त करनेमें जन्दको हजारों वर्ष लगे होंगे। आओ इस भाषाका एक वडा श्लोक आपको दिखलावें।

"यथा अहु वइर्यो अथा रतुश अशात् चित् हचा वंहे उश दजदा मनंहो श्यओ थनम् अहेउश मजदाई क्षथ्रेम चा अहुराई आयिम द्रिगुब्यो ददात् वास्तारेम नमसेते अहुरा मजदा श्रीश्ची परो अन्याइश टाम।"

आप क्या समझे? इसको सुनकर क्या आपको यह मालूम हुआ कि हम वेद सुनरहेहैं? अथवा क्या यही ज्ञात हुआ कि हम संस्कृत सुनरहेहैं? नहीं। तब फिर क्यों लोगोंने ऐसा हल्ला मचादिया है कि जंद और वेद समकालीन भाषाहैं? इसलिये कि संस्कृतके शब्द बहुतसे प्रत्यक्ष और बहुतसे बिगडे हुए अधिकतासे मिलतेहैं, जैसे ऊपरवाले श्लोकमें आपको 'यथा, अथ, चित्, मनं क्षत्रेम, चा, ददात्, नमस्ते और परो बिलकुल संस्कृतके शब्द मिलगये और कई शब्द अपना रूप बिगडेहुए भी मिले। इस तरहसे सब मिलाकर जब आधे शब्द संस्कृतके मिलते हैं तो चालाक लोगोंको बेढंगाली बात कुपढोंके सामने कहनेकी हिम्मत पडजातीहै। विशेष कर जब धार्मिक रहस्य और यज्ञ विधानदेखे जातेहैं तो और भी समझानेका मौका मिलता है पर जिसने जन्दके पुराने भाग गाथाका पाठ किया है और जरदुश्तके पैगम्बर बननेका समाचार गौरसे देखा है वह जानता है कि जन्दावस्थाकी भाषा और उसका धर्म वेदोंकी भाषा और वेद धर्मसे कितना (बहुत) दूर है। किन्तु धार्मिक भावोंका अधिक मिलाप और भाषाकी अधिक समता इस बातको

बतला रही है कि जिस प्रकार हिन्दी, बङ्गाली, गुजराती और मरहठी प्रान्त भेदसे एक ही भाषाको लेकर अलग २ किन्तु एक ही रूपकी एक ही देशमे बोली जाती हैं, उसी प्रकार भारत और ईरान एक ही देशके अन्तर्गत होनेके कारण प्रान्तभिदकी भाति उस समयकी सस्कृत जेंद और प्राकृत आदि भाषायें मिलीजुली बोली जाती थीं। पर वे कब जुदा हुई थीं, और जिस भाषासे वे जुदा हुई थीं वह भाषा वेद भाषासे कब जुदा हुई थी, इसका हजार दो हजार वर्षके भीतर अन्दाजा लगाना भँगेड़ी पना है। हमारा विश्वास है कि संस्कृतमे जेन्द भी उसी प्रकार निकली है, जिस प्रकार लेटिन और अरबी,पर जेन्दका वर्तमान रूप पानेमें उसे हजारों वर्ष लगे हैं। जन्द फारसी और पस्तोमे आकर खतम होगई है तथापि अभी थोडेसे लोग उसका पुराना रूप लिये हुए हैं। फारसी भाषा किस प्रकार बनी है यह जिसे देखना हो वह जन्दभाषा देखे। सस्कृतके शब्द किस प्रकार बिगडे हैं और क्या का क्या किस प्रकार हुआ है इस उलझनकी गांठ तब सुलझती है जब 'सहस्र' और 'हजार' का रूप ज्ञात होताहै। 'ऊष्ट्र' और 'शुतुर' 'जिह्वा' और 'हिज्वा' का जब भेद खुलता है तब बडा ही मनोरंजन होताहै! यद्यपि इस भाषाके शब्दोंको दिखलाना कि ये सस्कृतसे निकले हैं, फिजूल है, क्योंकि लोग तो इसे वेदोंकी साथिन बतलाते हैं तथापि शब्दोंका विकृत दृश्य देखने योग्य है तथा उससे वेदोंके साथ समता कितनी है यह भी ज्ञात हो जाता है अतः हम यहां कुछ शब्द देते हैं।

सस्कृत 'स' जेन्दमे 'ह' होगया है।

संस्कृत	ज़ेंद	अर्थ
असुर	अहुर	परमेश्वर (असुषु प्राणेषु रमते)
सोम	होम	वनस्पति *
सप्त	हप्त	सात
सेना	हेना	फौज

* 'सोम' को लोग शराब बतलाते हैं पर जेन्द- भाषामें उसका वैसा वैदिक अर्थ लिया गया है।

संस्कृत 'ह' जेंदमें 'ज' होगया है।

हस्त	जस्त	हाथ
होता	जोता	अग्निमें आहुति डालनेवाला
आहुति	आजुति	आहुति
बाहु	बाजु	हाथ
अहि	अजि	सर्प

संस्कृत 'ज' जेंदमें 'ज' होगया है

जानु	जानु	घुटना
वज्र	वज्र	मेघवज्र
अजा	अजा	बकरी
जिह्वा	हिज्वा	जबान

संस्कृत 'श्व' जेंदमें 'स्प' होगया है।

विश्व	विस्प	सब (संसार)
अश्व	अस्प	घोडा

संस्कृत 'श्व' या 'स्व' जेंदमें 'क' होजाता है।

श्वशुर	कुशुर	ससुर
स्वप्न	कफ्न	सपना

संस्कृत 'त' जेंदमें 'थ' होजाताहै।

मित्र	मिथ्र	दोस्त
मन्त्र	मन्थ्र	श्लोक

संस्कृत 'भ' जेंदमें 'फ' होजाताहै।

गृभ	ग्रिफ्त	पकडना
गोमेध	गोमेज	खेतीकरना

ज्योंके त्यों शब्द भी देखिये।

पशु	पशु	पशु
गो	गाव	गाय
उक्षन्	उक्षन्	बैल

यत्र	यत्र	जौ
वैद्य	वैद्य	वैद्य
वायु	वायु	हवा
इशु	इषु	बाण
रथ	रथ	गाडी
गान्धर्व	गान्धर्व	गानेवाले
अथर्वन	अथर्वन	यज्ञकृपि
गाथा	गाथा	पवित्रपुस्तक
इष्टि	इष्टि	यज्ञ
छन्द	जन्द	'छदस' ज्ञान, अथर्व वेद।

पाठक! आपने अशुद्ध और शुद्ध दोनो प्रकारके शब्द देखे। इसपरसे आप समझ सकतेहैं कि जहा सकारका हकार और हकारका जकार और 'श्व' का 'क्' होना पायाजाय वह भाषा वैदिक समयकी कैसे हो सकती है और कैसे (Direct) वेदसे निकलीहुई कहीजा सकतीहै? हा यह संस्कृतसे अवश्य निकली है। संस्कृतकी ही भाति उसमें 'अग्नि' का 'अलि' 'असि' का 'अहि' आदिव्याकरण भी पायाजाता है। उन ग्रन्थोंमें भाव भी पौराणिक समयके ही पायेजाते हैं जैसे 'पृथिवीका गौ बनकर ईश्वरके पास जाना और अपनी रक्षाके लिये जरदुस्तका मागना" यह बात गाथा (जो सबमें पुरानी पुस्तक है उस) के आरम्भमे लिखी है। इधर यही बातें हम पुराणोंमें पातेहैं। व्यासका और जरदुस्तका (जो गाथाका रचयिता है) बलखमें शास्त्रार्थ होना, दसातीरनामका ग्रन्थ बतलाताहै। वहा लिखा है कि "अकनु विहाणे व्यास नामज हिन्द आयद" अर्थात् एक व्यास नामका ब्राह्मण हिन्दसे आया है। इससे सिद्ध होताहै कि जन्दभाषा व्यासके समयकी है। महाभारतके समयमे व्यासका पता मिलताहै अत जेंदभाषा बहुत नवीन है। इसे वेदकालिक कहना मूर्खता है क्यों कि 'वेद' तो व्यासदेवके हजारों वर्ष पूर्व विद्यमान थे, जिसको व्यास भी 'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्रमें कितनी इज्जतसे 'शास्त्र' कहतेहैं।

फारसी भाषा ।

अब यहां फारसी भाषाके शब्दोंको लिखतेहैं । इस देशमें हिन्दू और मुसल्मान दो ही प्रधान जातियां हैं । उनमें हिन्दी और उर्दूकी रोज मारामार रहती है । हिन्दीवाले कहतेहैं कि संस्कृत शब्द विशेषवाली भाषा हो और मुसल्मान कहतेहैं नहीं जिसमें फारसीके शब्द अधिक हों, वही इस देशकी भाषा हो । फारसी विशेषको उर्दू और संस्कृत विशेषको हिन्दी कहतेहैं । हम यहां साथ साथ इस झगडेको भी मेटे देतेहैं । नीचे जो शब्द समूह दियाजाताहै उससे साफ प्रकट होताहै कि फारसी संस्कृतकी पोती है । क्योंकि यह जेंदसे पहलवी होकर आई है । जब फारसी कोई चीज ही नहीं है, जब फारसी केवल संस्कृतका बिगडाहुआ रूप है । तो फिर तकरार ही क्या ? :–

संस्कृत	फारसी	अर्थ
जानु	ज़ानु	पैरके बीचकी बडी गांठ, घुटना
बाहु	बाज़ू	हाथ (हकारका जकार होजाताहै)
जिह्वा	ज़बां	जीभ (जेन्दमें हिज्बा होकर जबां हुआ है)
अंगुष्ट	अंगुश्त	उँगली
हस्त	दस्त	हाथ (जदमेंज़स्त था फिर दस्त हुआ)
दृष्ट	सख्त	मजबूत, कठिन
पुष्ट	पुख्त	मोटा, पक्का
दन्त	दन्दा	दांत
पृष्ट	पुश्त	पीठ
पाद	पा	पैर
शिर	सर	मुण्ड
अश्व	अस्प	घोडा
मेष	मेश	भेड
खर	ख़र	गधा
उष्ट्र	शुतर	ऊंट (फारसीमें उस्तर भी पाया जाता है)
गौ	गाव	गाय

मत्स्य	माही	मछली
श्वा	सग	कुत्ता
अहिदाहक	अजदहा	साप
मूस	मूश	चूहा
शृगाल	शग़ाल	सियार
कुक्कुट	कूकडा	मुर्गी
काक	ज़ाग़	कौवा
आप	आब	पानी
वात	बाद	वायु
पुरोहित	फरिश्ता	दूत *
तारा	सितारा	तारागण
ताप	ताब	गर्मी और प्रकाश
आपताप	आफताब	सूर्य
मासताप	माहताब	चन्द्र
मास	माह	महीना('स'का'ह'होजाताहै)
मेघ	मेह	बादल
अभ्र	अब्र	मेघ
वसिष्ठ	बहिश्त	स्वर्ग
मृत्यु (मृ)	मर्ग	मरना
चक्र	चर्ख़	चक्कर
एक	यक	एक
द्वि	दो	दो
चत्वारि	चहार	चार
पञ्च	पञ्ज	पांच

* 'अग्निमीळे पुरोहितं' 'अग्निर्दूत पुरोदधे' अग्नि वायुका दूत है, यही सब हव्य-पहुंचाता है उसीको पारसीधर्ममें 'फेरेश्ता'-कहा गया है, मुसल्मान भी फरिश्ता-को आतिशी अर्थात आग्नेय मानते हैं।

षट्	शश	छ
सप्त	हफ्त	सात
अष्ट	हश्त	आठ
नव	नैः	नौ
दश	दह	दस
शत	सद	सौ
सहस्र	हज़ार	हजार*
क्षुद्र	खुर्द	छोटा
पितृ	पिदर	पिता
मातृ	मादर	माता
भ्रातृ	बिरादर	भाई
दुहितृ	दुख्तर	लड़की
श्वशुर	खुसुर	ससुर
श्रवण	शुनीद	सुना
दृष्टि	दीद	देखना
प्रश्न	पुरशीदन	पूछना
क्षीर	शीर	दूध
शर्करा	शकर	खांड
ताम्बूल	तम्बूल	पान
कर्पूर	काफ़ूर	कपूर
लवण	नमक	नमक
कर्ष	कश	खींचना
कुलाल	कुलाल	कुम्हार
वृक्ष	दरख्त	झाड
शाखा	शाख	डाली

*'स' का 'ह' और 'ह' को 'ज़' होनेसे अंतमें हस्रेह हुआ या पीछे हजार होगया।

पारि	बर	ऊपर (तदुपरि, बर दूकान)
गोधूम	गन्दुम	गेहूँ
माष	माश	उड़द
यव	जौ	जौ
शालि	शालि	धान
स्थान	स्तान	स्थान (जैसे हिन्दोस्तान)
नाभि	नाफ़	नाभि
अस्थि	उस्तख़ाँ	हड्डी
चर्म	चिरम	चमड़ा
मिश्री	मिसरी	मिश्री
पक्ष	पर	पर (पक्षियोंके पर)
नर	नर	पुंसत्व
माता (माया)	मादा (मांदा)	स्त्रीत्व
युवा	जवां	जवान
क्षत	ख़त	कटाहुआ
विधवा	बेवा	रांड
श्वेत	सुपेद (सुफ़ेद)	सपेद
अहम्	अम्	मैं
त्वं	तो	तू
इदम्	ई	यह
अस्ति	अस्त	है
नास्ति	नेस्त	नहीं है
कृणु	कुन	कर
मश्की	भिश्ती	पानी देनेवाला
गर्व	ग़ुरूर	अभिमान
निकट	निज़्द	नजदीक
शलाका	शलाख़	शलाका

गृभ	गिरत	पकड़ना
ग्रन्थि	गिरह	गांठ
चक्षु	चश्म	आंखें
यक्ष्मा	ज़ख़्म	घाव (छातीके अन्दर का घाव)
गळा	गुलू	गला
ग्रीवा	गरेवां	गरदन
नमः	नमाज़	नमस्कार *
अधिकार	अख़्तियार	अधिकार
अंगुलीय	अंगुश्तरी	अंगूठी
दूर	दूर	दूर
वीक्ष्ण	वीन	देखना
दुःशमन	दुश्मन	[illegible]
सायम्	शाम	[illegible]
चन्दन	सन्दल	[illegible]न्दन
वन्ध	बन्द	[illegible]ाँधना
मुक्त	मुख़लिस	खुलाहुआ
न्योछावर	निसार	न्योछावर
नजात	नजात	न पैदा होना (मुक्त होना)
तन	तन	शरीर
बदन	बदन	मुख, शरीर
चक्र	चर्ख़	चक्र (आसमान)
कृमि	किरम्	कीडे
आपत्ति	आफ़त	दुर्घटना
नाम	नाम	नाम
छाया	साया	छांह

* विसर्गकी आवाज हकार है और हकार ज़कार होजाता है इसलिये ज़ेंदमें नमज़ हुआ और फ़ारसीमें नमाज हो गया।

मनइच्छा	मन्शा	इच्छा
अक्षमान	आसमान	आसमान
भार	बार	बोझा
भ्रू	अब्रू	भौंह
वस्त्र	विस्तर	कपडा

अंग्रेजी भाषा।

अगरेजी भाषाके शब्दोंको यहा लिखतेहैं। आप देखें किस प्रकार सस्कृतसे निकले हैं। इससे योरोपकी समस्त भाषाओंका पता लगजायगा। क्योंकि लैटिन फ्रेंच आदि योरोपकी सभी भाषाओंके मिश्रणसे अगरेजी भाषा बनी है लैटिन उसी प्रकार सस्कृतकी बेटी है, जैसे जेंद और अरबी, क्योंकि इनमें लिङ्ग और वचन एक ही प्रकारके हैं। अगरेजी भाषा आजकल इस देशमें प्रचलित है, इसलिये भी दरकार है कि हम दिखलावें कि अगरेजी कोई विशेष भाषा नहीं है, केवल भ्रष्ट हुई सस्कृत है।

सस्कृत	अगरेजी	अर्थ
शर्करा	सुगर	खाड (फारसीमें शकर होकर)
गो	गो	जाना, भूमि *
डु (कृञ=करणे)	डू	करना
न	नो	नहीं
नास्ति	नाट	नहीं (नात्ति, नाट्टि होकर)
लो	लो	देखना
सो	सो	यों, इस प्रकार
सिव	सिविंग्	सीना
चर्व	च्यू	चबाना

* 'ग' गमन अर्थमें है। अगरेजीमें जितने भौगोलिक शब्द आये हैं उनमे geo जियो अर्थात् गो सबमें आया है यथा geogrophy geomatry और गो का अर्थ संस्कृतमें भूमि है ही इसलिये गोका अर्थ जाना और भूमि किया गया है।

मृड	मड	मिट्टी
द्यौ	डे	दिन
नक्त.	नाइट	रात
अत्ति	ईट	खाना, भोजन करना
पुरुषम्	परसन	आदमी
मनु	मैन	आदमी
यू (यूयम्)	यू	तुम
द्योपितर	जुपिटर	आकाश, बृहस्पति
शेटक	सियर	सेर (तोलनेका)
मण	माउण्ड्	मन (तोलनेका)
लोक	लुक	आलोक, अवलोकन
मर्चेयत	मर्चेंट	रोज़गारी
सांग	सॉंग	संगीत
मास	मथ	महीना
मन	माइंड	मन
हृत्	हर्ट	हृदय
द्वौ	टू	दो
त्रि	थ्री	तीन
सष्ठ	सिक्स	छे
अष्ट	एट	आठ
नव	नाइन	नव
षष्टि	सिक्सटी	साठ
लक्ष	लैक	लाख
उक्ष	ऑक्स	बैल
गौ	काउ	गाय
अश्व	हार्स	घोडा
पथ	पैथ	रास्ता

सर्प	सर्पेंट	सांप
ओम्	आमीन	परमेश्वर
समिति	कमिटी	पंचायत, कमेटी
तरु	ट्री	वृक्ष
पार	फ़ार	आखीर, दूर
फुल्ल	फ्लावर	फूल
लम्ब	लांग	लम्बा
प्रलम्ब	प्रोलांग	लंबा करना
वक्र	कर्व	टेढ़ा
द्वार	डोर	दरवाजा
मूस	माउस	चूहा
तारा	स्टार	सितारा, तारागण
कर्पूर	कैम्फ़र	कपूर
अहिफेन	ओपियम	अफीम
हस्त	हैंड	हाथ
प्रश्न	क्वैश्चन	प्रश्न करना
पितृ	फादर	बाप
मातृ	मदर	मां
भ्रातृ	ब्रादर	भाई
दुहितृ	डाटर	लड़की
स्वसा	सिस्टर	बहन
सूनु	सन	बेटा
अन्तर	अन्डर	नीचे भीतर
बहुतर	बेटर	बहुत अच्छा
उपरि	ओवर	ऊपर
दन्त	डेन्ट	दांत
नव	न्यू	नया

नास्ति	नाट	नहीं है
अस्ति	इज	है
अहम्	आइएम	मैं हूं
त्वा	दाउ	तू
अन्	अन नहीं ('अनावश्यक' और 'अननोन')	
तर	अर विशेषण ('लम्बतर' और 'टालर')	
मुख	माउथ	मुंह
श्री	सर	महाशय
लोड	लोड	लादना
निकट	नियर	नेरे, नजदीक
वाक्यवल्लरी	वोक्युब्युलरी	वाक्यावली
घास	ग्रास	घास
कर्त	कट	काटना
मन्त्री	मिनिस्टर	दीवान
विधवा	विडो	रांड
भ्रम्	रांग	असत्य (यह शब्द 'व्रां' था जो भ्रम्-का अपभ्रंश है)
ऋत	राइट	सत्य
बन्ध	बाउंड	बांधना
सम्मिलित	एसिमिलेटेड	सम्मिलित रहना
क्रूर	क्रूअल	निर्दयी
दान	डोनेशन	दान
मिश्र	मिक्स	मिलाहुआ
गृध्नु	ग्रीडी	लोभी
मूक	म्यूट	गूंगा

मित्र	मिस्टर	प्यारे
नग्न	नेकेड	नगा
नाम	नेम	नाम
उलूक	आउल	उल्लू पक्षी
छाया	शैडो	छाया
महत्तर	मास्टर	बडा, उस्ताद
स्वन्	साउण्ड	शब्दकरना
स्थिर	स्टिल	ठहरना
स्वेद	स्वेट	पसीना
तृष्णा	थर्स्ट	प्यास
तान	टोन	तान
श्वेत	ह्वाइट	सफेद *
भ्रष्ट	वर्स्ट	खराब
चन्दन	सैंडल	चन्दन (यह फारसीमें सन्दल होकर)
लाड	लैड	बालक (लाडयेत् पञ्चवर्षाणि)
स्थित	सिट	बैठना
आविष्कार	इनवेन्शन	ईजाद, आविष्कार
भ्रू	ब्रो	भौंह

इस देशमें हिन्दू तथा मुसल्मान तो प्रजा और अगरेज लोग राजा हैं, हम राजप्रजाभाषा नीचेके नकशेमें दिखलाना चाहतेहैं कि तीनोंकी भाषा एक ही भाषाहै । उनकी भाषाओंमें कुछ भी फरक नहीं है वे दोनों संस्कृतकी बेटी हैं ।

संस्कृत	फारसी	अगरेजी	अर्थ
ओ३म्	अलम *	आमीन	परमेश्वर
कर्पूर	काफूर	कैम्फर	कपूर
अहिफेन	अफयून	ओपियम्	अफीम
श्वेत	सफेद	ह्वाइट	सफेद

* 'श' का 'ह' होकर ह्वाइट अर्थात् ह्वाइट हुआहै।

द्वार	दर	डोर	दरवाजा
बन्ध	बन्द	बाउण्ड	बाँधना
द्वौ	दो	टू	दो
षष्ठ	शश	सिक्स	छे
अष्ट	हश्त	एट	आठ
नव	नै:	नाइन	नौ
भ्रष्ट	बद	बैड	खराब
हस्त	दस्त	हैंड	हाथ
अश्व	अस्प	हार्स	घोडा
माया	मादा	मैटर	प्रकृति
युवा	जवां	यंग	जवान
वक्र	बीक	कर्व	टेढा
मूस	मूश	माउस	चूहा
तारा	सितारा	स्टार	तारागण
शर्करा	शकर	सुगर	खांड
प्रश्न	पुरशीदन	क्वेश्चन	पूछना
पितृ *	पिदर	फादर	बाप
मातृ	मादर	मदर	मा
भ्रातृ	बिरादर	ब्रदर	भाई
दुहितृ	दुख़्तर	डाटर	लड़की
अन्तर	अन्दर	अण्डर	भीतर
चन्दन	सन्दल	सेंडल	चन्दन
नव	नौ	न्यू	नया
विधवा	बेवा	विडो	रांड
मृत्यु (मृ)	मर्ग	मोरटल	मरना
दन्त	दन्दा	डेराट	दांत
त्वं	तो	दाउ	तू

* 'पितृ' का अपभ्रंश लेटिनमें 'पेटर' जरमनमें 'पतेर' हुआ है इसी प्रकार 'मातृ' का लेटिनमें 'मेटर' और जरमनमें मातेर होगया है।

नास्ति	नेस्त	नाट	नहीं है
अस्ति	अस्त	इज	है
वहुतर	बेहतर	बेटर	बहुत अच्छा
नाम	नांम	नेम	नाम
छाया	साया	सैडो	छाया
मनइच्छा	मन्शा	मेनशन	इरादा
मुह	अदू	मो	मोह

अरबीभाषा ।

आर्य भाषाओंका विवरण समाप्त करके अब सेमिटिक भाषाओंका विवरण यहा दिखलाना चाहतेहं । सेमिटिक भाषाओंमें प्राय दो ही भाषा संसारमें जीतीहुई समझी जाती हैं । एक 'हिब्रू' जिसमे शुरू शुरूमें वाइविल लिखीगई थी और दूसरी 'अरबी' जिसमें कुरानशरीफ तथा और बहुत बड़ा साहित्य विद्यमान है । यद्यपि पहिले योरोपीय विद्वान् कहाकरते थे कि आर्य और सेमिटिक भाषायें बिलकुल भिन्न हैं, उनमें एक दूसरीसे कुछ भी सबन्ध नहीं है परन्तु अफरीकादेशस्थ मिश्र अर्थात् इजिप्टदेशकी भाषाके अध्ययनसे पाश्चात्य विद्वानोंको अब पता लगगया है कि इन आर्य और सेमिटिक दोनों भाषाओंका समावेश उस भाषामें होगया है और ज्ञात होताहै कि सेमिटिक भी आर्यभाषासे ही निकली है, क्योंकि मिश्रदेशकी भाषाके शब्दोंके धातु आर्यभाषासे मिलतेहैं, जो भाषा साम्यके लिये काफी हैं, केवल व्याकरण सेमिटिकका सा ज्ञात होताहै, जो गौण पक्ष है ।

पाठक ! व्याकरणकी शका हम मिटाये देतेहैं, क्योंकि यह सिद्ध बात है कि जिन भाषाओंमें लिङ्ग और वचन तीन होवें अर्थात् जिन भाषाओंमें एकवचन द्विवचन और बहुवचन अथवा स्त्रीलिङ्ग पुँल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग हों, समझलेना चाहिये कि वे भाषायें वेदभाषाके बहुत निकटकी हैं । लेटिन और जन्द इस बातका उज्वल उदाहरण हैं । आज जब हम सेमिटिक भाषाकी प्रतिनिधि 'अरबी' भाषामें भी वही तीन वचन और तीन लिङ्गका आश्चर्यजनक कौशल विद्यमान पाते हैं तो क्या अब भी कोई शक बाकी

रह सकताहै कि 'अर्बी संस्कृतसे सम्बन्ध नहीं रखती? * यदि अब भी सन्देह हो तो लीजिये देखिये किस प्रकार संस्कृतके स्वच्छ शब्द अबतक अरबीके मरुस्थलमें रक्षित हैं, यद्यपि अरबी बोलनेवालोंने हलकसे बोल बोलकर उसे ऊटोंकी भाषा बनादिया है। वे शब्द ये हैं—

संस्कृत	अरबी	अर्थ
हर्म्य	हरम	महल
सुर	हूर	देव
नर्क	नार	नर्क
पुन्नर्क	फिनार	नर्क
अन्तकाल	इन्तकाल	मरजाना, गुजरजाना
कत	क़ात	काटना(अंगरेज़ीका Cut कट भी इसीसे बना है)
कीर्तन	क़िरतेअन	पढ़ना, पाठ करना (इसी क़िरतेअन धातुसे क़ुरआन शब्द बना है)
गल्भ	वल्ग	प्रगल्भता, बलागत
अजहार	इज़हार	कहना, जाहिर करना, प्रकट करना (संस्कृतमें विपूर्व लिखनेसे 'व्याजहार' होताहै, जिसका अर्थ जाहर करना है)
शम्	सलाम	शान्ति—(लाम बहुधा लुप्त हो-जाया करताहै)

* विशेष कर जब अर्बीके व्याकरणमें भी संस्कृतकी भांति पुंलिङ्गमें अकार मिलानेसे स्त्रीलिंग होना देखते है यथा—साहबसे साहबा, मलकसे मलका, वालिदसे वालिदा तो व्याकरणका शक भी जाता रहता है। यह कौशल ठीक वैसाही है, जैसा रामसे 'रमा' शिवसे 'शिवा' आदि।

ओ३म्	अल्लम *	परमेश्वर(यहां भी लाम छुप्त करनेसे और उका आगम करनेसे ओम् हुआहै).
लोहित	लहू	खून
तिर (तिर्यग्)	तैरून	तैरनेवाले,टेढा चलनेवाले पक्षी:
मा	मा	नहीं, जैसे 'मा कुरु,
ये:	य	और, जो
व	व	और, अथवा
अहिफेन	अफयून	अफीम
पालक	वालिद	बाप (पिता माता पालयिता वा)
षष्ठ	सित्ता	छे
सप्त	सब्बा	सात
ईळे	अल्ला	परमेश्वर (अग्निमीळे)
सिंह	हैसिम	शेर
मन्युं	मन्युअ	गुस्सा करनेवाला, मना करनेवाला
दोहन	दुहन	घी,मक्खन आदि
दैत्य	दियत	खून वहानेवाला
विद्यु	वर्क	बिजली
सरकत(सृ=धातु)	हरकत	सरकना
नः	ना	हमलोग
महत्	माजिद	वडे, बुजुर्ग
ख	खला	आकाश
भ्रम	वहम्	भ्रम
द्यौः	योः	सूर्य
दिवम्	योम्	रोज, दिन

१ अरबीमें लकारका 'उ' हो जाता है, जैसे शफीउल्लदीनका शफीउद्दीन होजाताहै अर्थात् लकारका लोप होकर उकार होजाताहै । इसी वास्ते अल्लम ओम है ।

चरक	सरक	वैदिकपुस्तक
सुश्रुत	सरसस	वैद्यकका ग्रन्थ
निदान	चेदान	निदान
मा (माता)	उम्म	माता
पा (पिता)	अब्रा	पिता
रीति	तरीक़	ढंग

अफ़रीकाकी स्वाहिली भाषा *

संस्कृत	स्वाहिली	अर्थ
ध्यान	धानी	विचार करना
कर्त	काटा	काटना
मृत्यु	माती	मरना
द्यौ (ज्योति)	जुआ	सूर्य
जम्बु	जम्बरऊ	जामुन
पुगी	पोपो	सुपारी
सिंह	सिम्बा	शेर
गौ	गोम्बे	गाय
गोधूम	गानो	गेहूँ
षट्‌	सीता	छे
सप्त	सबा	सात

चीनाभाषा।

अब हम चीनाभाषाका सम्बन्ध संस्कृतभाषाके साथ दिखलाते हैं। यह भाषा वेदभाषासे लाखों वर्ष पूर्व जुदा होकर और अनेक रूप धारण करती हुई इस रूपमें पाई जाती है, तथापि अपनी पूर्व जननीकी तीन चार बड़ी २ पहिचानें रखती है (१) वेदभाषाके शब्दोंमें जो आप उदात्त अनुदात्त और

* यह अफ़रीकाकी प्रधान भाषाकी प्रधान शाखा है। इसीकी शाखा जो मिश्रमें बोली जाती है, आर्य और सेमिटिक भाषाओंको मिलाती है। इसी लिये हमने यहां अरबीके सिलसिलेमें रख दिया है।

स्वारितके चिह्न पाते हैं और जानते हैं कि उनके हेरफेरसे अर्थमें अन्तर पड़ जाता है, ठीक उसी प्रकार टोन (स्वर) का अन्तर होनेसे चीना भाषाका भी अर्थ बदलजाता है । *(२)दूसरी बात चीनाभाषाके शब्दोंकी लघुता है । चीनका मूलशब्द एकाक्षरी अथवा डेढ अक्षरी है । मुश्किलसे कोई शब्द दो तीन अक्षरका होगा, अर्थात् मूल धातुओंमें केवल टोन (स्वर) और मात्राको ही प्रत्यय करके शब्द बनालेते हैं । इसीसे उनके शब्द 'अनएक्सचेंज एबि-लिटीनेस' की भांति शैतानकी आन्त नहीं होते । यही बात आप संस्कृतके धातुओंमें पायेंगे । अतिप्राचीन मूल धातु सब प्रायः एकाक्षरी 'ग' 'धा' 'या' 'मा' 'भा' आदि अथवा 'इण्' 'अस्' 'इर्' आदिकी भांति डेढ अक्षरी हैं । इन्हींमें प्रत्यय लगाकर शब्द बना लेते हैं । इससे ज्ञात होताहै कि यह भाषा बहुत पुराने समयमें वैदिकभाषासे अलग हुई थी तथापि उसके अन्दर अनेक शब्द जरा जरासा रूप बदले हुए ज्योंके त्यों अब भी विद्यमान हैं । (३) इसकी एक शाखामें अबतक आठ विभक्तियों और तीन वचनोंका प्रयोग होताहै।इस भाषाका नाम है'सामोपेडिक' और'पैतिसी' तथा 'ओव' नदियोंके किनारोंपर बसनेवाले बोलते हैं । चीनाभाषामें मूल-धातु सब मिलाकर२६०से अधिक नहीं हैं । पर वे लोग उस एक एक ध्वनि-

---

* Try to say these simple Chinese words There is "table," *toh.* That seems easy, No you are saying *tõh*, a knife. Wrong again. That is *to*, to fall. Oh ! when you say your *t* aspirated, to demand. You try again & again, and say "cover," "peck," "fish," "peach," anything but "table." (Pees at Many Lands China by Lena E. Johnston)

अर्थात् चीनी भाषाके मामूली शब्दों ही को बोलनेका प्रयत्न कीजिये । मसलन् मेजके वास्ते शब्द है " टौह " । मालूम होता है कि इसका उचारण बिल्कुल सहज है । परन्तु नहीं आपने इसके उच्चारणमें जहां तनिक भी फरक किया कि इसके भिन्न ही भिन्न अर्थ निकलने लगेंगे कभी " चाकू, " कभी " गिरना, " कभी " मांगना, " इसी प्रकार " मच्छी " "ढकना " वगैरह अनेकों अर्थ किञ्चिन्मात्र उचारणभेदसे इसी एक ही शब्दके हो जावेंगे परन्तु वह " टेबल " जो कि आपका अभीष्ट था, न निकलेगा । मालूम होताहै कि वैदिक या संस्कृत स्वर शास्त्रका ठेका इन्हींने ले रक्खा है ।

में ही उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुनासिक, गोल (बंगालियोंकी भांति) चपटे टेढे आदि अनेक रूपोंमें ढालकर अपने शब्दोंको अनेक रूपोंका करलेते हैं और अपना सब काम चला लेते हैं। यही कारण है कि हमको उन २५० शब्दोंमेंसे बहुत थोडे शब्द मिल सके हैं। (४) चीनाभाषामें इस देशसे सम्बन्ध रखनेवाली एक और बडी विलक्षण बात है। वह यह है कि हमारे देशमें जिस प्रकार बंगाली लोग प्रत्येक ह्रस्व अक्षरको गोल करके कुछ ओकारकीसी ध्वनि कर देते हैं, जैसे 'कथा' को 'कोथा' ठीक इसी प्रकार चीनाभाषामें भी देखा जाता है, जिसका नमूना नीचेकी लिस्टसे ज्ञात होजायगा।

संस्कृत	चीना	अर्थ
वक्षु (वङ्कू) *	पोचू (फोचू)	अक्ससनदी(यह ग्रीक नाम है)
मालवा	मोलोपो	देश
नन्ददेवकुल	नेफोटिपोवुलो	एक वंश
तक्षशिला	तेचशिथिलो	एक स्थान
स्थान	तान	थान
श्री	श्री (शिरि)	गुरु आचार्य
ज्योतिः स्थान	जितान	सूर्यमन्दिर
जन	जिन	मनुष्य
लिङ्ग	लङ्ग	चिह्न, मनुष्य
अम्बा	मा	माता
कृ (कृञ्) (करना)	डो	कर्तव्य
जनस्थान	जिनतान	पृथिवी

* यह वह नदी है, जिसके किनारेपर कालिदासने रघुको पहुँचाकर हूँणोंका पराजय कराया है।

१ इन चारोंके अपभ्रंश और बंगालके 'ओ' युक्त उच्चारणपर विशेष ध्यान देने योग्य है। मूल शब्दोंपर जब इस प्रकार निर्दयता हो तो भला ढूंढनेवाले क्या अपना शिर कूटें? और मौका पाकर पक्षपाती लोग क्यों दूसरी भाषा क्यों न बना दें

ग्रुस्यान	टियनतान	'स्वर्ग' ('दकार'का 'टकार' होजाताहै, जैसे 'नेफोटिपो'
होम	घोम	होम, हवन, यज्ञ

चीनाभाषासे ही जापानी भाषा निकली है, यद्यपि उस समय जब जापानी भाषा चीनाभाषासे बनतीजातीथी, जापानी लोग महापूर्वदेशमें थे, यहां तक कि उनको दशसे, अधिक गिनना भी नहीं आता था तथापि उस भाषामें भी संस्कृतके बहुतसे शब्द अबतक मौजूद हैं और बडे जोरसे साबित कररहेहैं कि चीन और जापानकी भाषाय निस्सन्देह आर्यभाषाओंकी ही अपभ्रष्टरूप हैं। जापानी लोग शब्दोंको विगाडनेमें चीनियोंसे भी अधिक बहादुर हैं। यद्यपि उन्होंने अभी २ इन अंगरेजी शब्दोंको बहुत बुरी तरहसे विगाडाहै। यथा लेमोनेड=रामुने। ह्विस्की=वुसुकी। ब्रान्डी=बुरान्दी। लॅम्प=रामपु आदि—तथापि नीचेके शब्दोंको देखो कि संस्कृतका अपभ्रंश इतने दिनमें भी अधिक नहीं हो सका है।

संस्कृत	जापानी	अर्थ
का, कः (किं)	का?	क्या
द्यौ	दे	सूर्योदय
उक्ष	ओउशी	बैल
ज्ञानी	सान	श्रीमान्
बहुत्व	मोत्तो	बहुत
नित्यनित्य	नीचीनीची	नित्य २
शिष्य	शोसेई	शिष्य
गीईशः	गेईशा	गानेवाला
कनक	किनका	सोना
केश	के	बाल
अहिफेन	आहेन	अफीम
सो	सोरे	वह
मार्ग	माच	राह

जर्मनि	जीमन	जमीन
हो	हे	ह
ओ	ओई	ऐ
चामी	फार्गी	चामी
चूँची	चीची	स्तन
गोंदे	गोम	गोंद

द्रविड़भाषा।

अखीरमें हम द्रविडभाषा लिखते हैं। यद्यपि इसका शब्दकोष न बढायेंगे क्योंकि इस विषयमें मद्रास निवासी श्रीमान् शेषागिरि शास्त्रीने एक पृथक् पुस्तक लिखकर अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिया है कि द्रविडभाषाओंका भी संस्कृतसे उसी प्रकार सम्बन्ध है, जैसे जेंद और फारसी आदिका। ये बिलकुल संस्कृतका ही अपभ्रष्ट रूप हैं, तथापि द्रविड लोगोंके विषयमें योरोपीय विद्वानोंका जो एक विचित्र मत है, उसका निबटेरा होना भी इसी मौकेका काम है।

म्योर साहब कहते हैं कि "तीन सहस्र वर्ष पूर्व जब आर्य लोग उत्तर पश्चिम कोणसे आये उस समय भारतवर्षमें वही श्यामवर्ण जाति आबाद थी जो बिल्कुल आस्ट्रेलियानिवासियोंकी भांति द्रविडभाषा बोलती है" अंगरेजोंके फैसलेके माफिक आर्योंकी मीरास तो यह देश है ही नहीं किन्तु नान आर्यों (द्राविड़ों) की भी मीरास नहीं है। क्योंकि वे आस्ट्रेलियासे आकर यहां बसे हैं। यहां आर्य और द्रविडोंकी ऐक्यता मिटायी गयी है और इस देशकी कब्जेदारीपर भी अच्छा वार किया गया है। यद्यपि जबतक भारतवर्षकी किसी पुस्तकमें यह न दिखला दियाजाय कि 'जब हम आर्य इस देशमें आये तो उस समय हमसे भिन्न कोई दूसरी जाति यहांपर रहती थी' तबतक यह कथन मद्यप्रलाप ही है, तथापि इस विषयमें भारतवर्षका इतिहास क्या कहता कहता है, सो हम यहाँ लिखते हैं, सुनो।

---

१ ये शब्द भी आर्यभाषाकेही है और भारतसे ही गये हैं पर वे हालमें ही गये मालूम होते हैं।

आदि सृष्टिके कुछ ही काल बाद आर्य लोग हिमालयसे उतरकर नीचे आबाद हुए और आरामसे रहने लगे, किन्तु क्षत्रियोंमें कुछ प्रमाद बढा और विद्या पढनेसे जी चुराने लगे। गुरुकुलोंमें रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करनेसे कोमल राजकुमार घबराने लगे, अतः मनुकी कानूनके माफिक व्रात्य करके जातिसे निकालेगये, क्यों कि उस समयका कायदा था कि ' सावित्र्या पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिता । ' अर्थात् यदि गुरुकुलवास करके विद्या, ब्रह्मचर्यका सेवन न करे तो आर्यत्वसे पृथक् करदिया जाय, अर्थात् दस्यु करदिया जाय। क्यों कि विना विद्या, विना सदाचार शिक्षा और विना ब्रह्मचर्य्यके यदि वह मूर्ख, जातिके अन्दर रहेगा तो जाति धीरे २ पतित होजायगी। इसलिये ऐसे लोग जातिसे बाहर किये जायँ और वे दस्यु कहलावें। वेदके कायदेसे मनुष्यकी दोही श्रेणी होसक्ती हैं। वैदिक अर्थात् आर्य और अवैदिक अर्थात् अनार्य दस्यु। (विजानीह्यार्य ये च दस्यवः—यजु०)

कुछ दिनके बाद यह व्रात्य (दल) बहुत बढगया। इसने आर्योंका विरोधी होकर'देवासुरसग्राम' नामका घोर युद्ध किया, किन्तु 'यतो धर्मस्ततो जयः' अन्तमें परास्त हुआ और देश छोड २ कर अनेक भागोंमें विभक्त होकर पृथ्वीके अनेक भागोंमें जा बसा, जैसा कि मनु महाराज कहतेहैं—

"पौण्ड्रकाश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः ।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ।
शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रियजातयः
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च " मनु० १०।४३।४४॥

ब्राह्मणोंके पास न जानेसे क्रिया लुप्त हुई, क्षत्रिय जाति वृषल होकर पौण्ड्र, चौड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश होगई, अर्थात् उस उस नामके देशोंमें जावसी और देशके नामसे जातिका भी वही नाम होगया किन्तु—

आर्य लोग उनको पुनः सुशिक्षित करनेके अभिप्रायसे उनके देशोंमें जाते रहे और उपदेश करते रहे "तदनुसार एक दीर्घकालके पश्चात् पुलस्त्य ऋषि

भी दक्षिणमेरु पार्श्वमें उपदेश करने गये । अधिक दिन रहनेके कारण वहीं विवाह भी होगया और सन्तान भी हुई । एक ब्रह्मचारी ऋषिकी सन्तान कितनी बहादुर हो सकती है और वंशपरम्पराके संस्कार कितने प्रबल होतेहैं, इन दोनों बातोंका नमूना रावण, उन्हीं ऋषि पुलस्त्यके पुत्रकी भार्याके पेटसे पैदा हुआ । यह बड़ा ही प्रचण्ड धनुर्विद्या कुशल, युद्धप्रिय और तामसी था । अत. इसने अपने आसपासके आस्ट्रेलिया, अफरीका, मेडेगास्कर आदि देशोंको कब्जेमें करके लङ्कामें राजधानी कायम की और भारतके भी दक्षिणीय समुद्र तटको दूरतक अपने कब्जेमें करलिया । सूर्पनखाके विधवा होजानेपर रावणने उसे १४ सहस्र फौज देकर खर दूषणकी सरदारीमें सौंपा और दक्षिण अरण्य उसे देदिया । वह सूर्पनखा रामचन्द्रपर आशिक हुई, जिसका नतीजा रामरावणयुद्ध हुआ"। (देखो वाल्मीकि० उत्तर सर्ग २ और २४) उस समयसे लङ्कानिवासी सारे भारतमें आते जाते रहे और विशेष कर मद्रास प्रान्तमें रहते रहे । इनकी भाषा निस्सन्देह आस्ट्रेलियाकी भाषा है, जैसा कि मैनिंग साहब अपने 'प्राचीन और मध्यन्तरी भारत"नामी ग्रंथमें लिखतेहैं कि 'हम मिस्टर वारिससे पूर्णतया सहमत हैं बल्कि इससे भी आगे कहतेहैं कि द्रविड और आस्ट्रेलियाकी भाषाओंका सम्बन्ध अब निश्चित् होगया है कि ये दोनों एक हैं तथापि उस भाषाकी मूलभाषा संस्कृत ही है, जैसा कि पण्डित शेषागिरि शास्त्रीने सिद्ध किया है। इसके सिवा यहां हम आधुनिक पण्डितोंके उन तीन आक्षेपोंका भी उत्तर देदेना चाहतेहैं, जिनको उन्होंने प्रबल समझ रक्खा है ।

(१) जितने मूलनिवासी हैं * सबकी भाषा आर्योंकी भाषासे भिन्न है ।

(२) आकृति भिन्न है ।

(३) विश्वास भिन्न है ।

---

* अंगरेजोंका मत है कि " मूल निवासी कोल भील संथाल और नटादि हैं । उनकी भाषा भी द्राविडी भाषासे मिलती हुई आस्ट्रेलियासे भी मिलती है अत' द्रविड और मूलनिवासियोंका सम्बन्ध घनिष्ट है ।

उत्तर—

(१) ऊपर जो कहागया था कि गुरुकुलवास न करनेसे जातिबाहर किया जाता था उसका कारण यही था कि जिससे भाषा, रूप और विश्वास कुछ भी न बिगडे। आप हर जगह देखतेहैं कि विद्वानोंकी भाषा शुद्ध और मूर्खोंकी अशुद्ध होतीहै। इन द्रविडोंकी वंशपरम्परा मूर्खतासे ही चली है, जैसा कि ऊपर मनुके प्रमाणमें दिखायागया है।इस पर भी न जानें बीच बीचमें इनकी उस अशुद्ध भाषाको विद्वानोंने व्याकरणसे कसकस कर कितनी बार ठीक किया और फिर मूर्खोंने उसे कितनी बार अपभ्रष्ट किया। इसी तरह अपभ्रष्ट भाषा भी फिर सुधारीगई और फिर अपभ्रष्ट हुई, जैसा कि जेंद, पहलवी, फारसी, उर्दू अथवा संस्कृत, प्राकृत, बँगला, मराठी, हिन्दी और ग्रामीण भाषाका हाल हुआहै। यही कारण है कि आज यह भाषा भिन्न ही प्रकारकी प्रतीत होतीहै।

(२) वर्ण इनका श्याम है, गर्म देशोंमें रहनेसे बहुधा ऐसा होगया है। इसके अतिरिक्त मूर्खता जिस प्रकार भाषाको अपभ्रष्ट करतीहै, वर्ण और आकृतिको भी उसी प्रकार खराब करदेतीहै, क्योंकि मूर्ख जन सभ्यता संस्कार कोमलता सौन्दर्यको जानते ही नहीं। मुम्बई और देहातके पारसी तथा कलकत्ता और देहातके बगाली दोनोंके वर्ण आकृति सभीमें भिन्नता है। बाज समय तो मालूम ही नहीं होता कि ये दोनों एक ही हैं।

(३) विश्वास भी मूर्खोंके विचित्र होतेहैं। पृथिवी गोल है और सूर्यके चारों ओर फिरती है इस विषयमें संसारभरके विद्वानोंका एक मत है, पर दुनियाँभरके मूर्खोंका न जानें इस विषयमें क्या क्या विश्वास हो, अतः भाषा, विश्वास और रंगमें फरक पडनेसे जाति दूसरी नहीं हो सकी। फौजके गोरे अशुद्ध बोलतेहैं, उनके विश्वास जंगली हैं, शकल भी बेडौल और भयानक होती तो क्या यह योरोपकी कोई दूसरी जाति हैं? नहीं। बस हमने यहाँ यह दिखलादिया कि वे मूलनिवासी(द्रविड)इस देशमें आर्योंके पूर्व नहीं बसते थे। आर्योंसे पूर्व यहाँ कोई भी नहीं बसता था। वे यहाँसे लड झगड कर आस्ट्रेलिया गये और वहाँसे अपनी भाषा और रूप बिगाडकर फिर यहाँ आये हैं। इनकी भाषामें संस्कृतकी छाया इस समयतक विद्यमान है।

यथा ये कर्पूरको 'करप्पू' कहतेहैं । अतः हम यहाँ इस 'करप्पू' विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली एक बात और कहना चाहतेहैं । वह बात यह है कि मद्रासमें दो चीजें पैदा होतीहैं ।

पृक 'चन्दन' दूसरा 'कर्पूर'—

किन्तु मद्रासी भाषामें इन दोनों मशहूर पदार्थोंके लिये शुद्ध संस्कृतके अतिरिक्त द्राविड़ी शब्द नहीं है । ये लोग चन्दनको 'मछीगन्धम्' अर्थात् मछी=अच्छी, गन्धम्=गन्ध "अच्छी गन्ध" कहतेहैं । और कर्पूरको 'करप्पू, कहतेहैं । इसपरसे आप विचार करसक्तेहैं कि यदि ये आर्योंके पहिले यहां बसते होते तो आर्यलोग चन्दनका नाम इन्हींसे जुरूर सीखते, क्योंकि चन्दन सिवा मद्रासके शेष भूमण्डलपर कहीं नहीं होता, किन्तु इनकी भाषामें चन्दनके लिये भी शब्द नहीं है । तभी तो 'मछी गन्धम्' शब्द बनाया गया है, किन्तु आर्यलोग इन दोनों पदार्थोंको न जानें कबसे जानते थे । आर्योंने ही इन दोनों पदार्थोंको अपने शब्दोंके साथ पारस अरब और योरोपतक पहुँचाया है देखो इनके अपभ्रष्ट रूप क्या गवाही देरहेहैं ।

संस्कृत	फारसी	अंगरेजी
कर्पूर	काफ़ूर	कैम्फर
चन्दन	सन्दल	सैंडल

यदि द्रविडादि मद्रासके मूलनिवासी होते तो उनके यहा कर्पूर और चन्दनके लिये कोई शब्द होता, किन्तु उन्होंने उसी कर्पूरको 'करप्पू'कर लिया है और चन्दनके लिये तो वह भी नहीं कर सके, किन्तु हा शायद कोई मनचले भाई यह कहदें कि तुम्हीने उनसे कर्पूर शब्द लिया होगा तो उत्तर यह है कि चन्दनके लिये तो उनके पास कुछ है ही नहीं, रहा कर्पूर सो कर्पूर हमारे पुराने ग्रंथोंमे मौजूद है, आओ हम आपको चन्दन, कर्पूर दोनों सुश्रुतमें दिखलादें—

'सतिक्तः सुरभिः शीतः 'कर्पूरो' 'लघुलेखन.'सुश्रुत सूत्रस्थान ४६।११७ तथा 'यथा खरश्चन्दनभारवाही' (सुश्रुत)

अब यह विषय सर्वांशतः निश्चित होगया कि द्रविडभाषा संस्कृतसेही

निकली है और द्रविड लोग भी आर्यसन्तानही हैं । विशेष शंका समाधानके लिये द्रविड (तिलगू) भाषाके भी कुछ शब्द संस्कृत शब्दोंके साथ लिखे देतेहैं । इसी प्रकार अन्य गोंडादिकोंकी भाषाके लिये भी समझना, क्योंकि सी. पी. गजेटियरने उनकी भाषाओंको भी आस्ट्रेलियाकी ही भाषा मानी है।

संस्कृत	द्राविडी (तिलगू)	अर्थ
अन्य	अन्नि	दूसरे, और, सब
चिक्कण(चकाचक)	चंक्कटि	सुन्दर, अच्छा, चिकना
मनुष्य	मनुष्कडु, मनीषि	आदमी
तालु	तला	शिर, मस्तिष्क
इह	ई	यहां
रे	ओरि	हे (सम्बोधन)
अन्तः	अन्दु, इन्दु	उसमें, इसमें
मंजु	मंचि	अच्छा उत्तम
अम्बुद	मब्बु	मेघ
नीर	नीरु	पानी
पत्नी	पेंडली	स्त्री
गौ	आँ	गाय
मेष	मेक	बकरा, भेडा
ऊष्ट्र (ऊँट)	ऊंटे	ऊँट
दैवम्	दय्यमु	भूत प्रेत अन्तरिक्षमें भयावह शक्ति
राजा	राजु	राजा
उडुप	ओड	जहाज
अटवि	अड्वि	जंगल
चंडाल	चड्डा	बदमाश
गोधूम	गोदमइ	गेहूं
घृतविटप	नाविडुचेदडु	आमका दरख्त
शर्करा (शक्कर)	चेक्कर	खांड

चूना	सुनसु	चूना
रयि	रावडि	धन, आमदनी
कर्पूर	कस्पूर	कपूर
उत्तर	उत्तरऊ	हुकुम, जवाब
छिल्लक	चुल्कन	न कुछ चीज, सहल
शर्दी (शरत्)	ठल्लि	सरदी
मूक	मूगा	गूंगा
पिण्ड (पेड)	पेट्टे	जड़वट, पेड
पारावत	पौरम्	कबूतर
काक	काकि	कौवा
अत्र	इकड़	इधर
तत्र	अकड़	उधर
पादक	पातिक	चतुर्थांश

यहांतक हमने इन बडी बडी सात भाषाओंके द्वारा दिग्दर्शन मात्र दिखलाया कि सारे संसारकी भाषाओंका उद्गमस्थान संस्कृत है[१] और इस बातको भी इसके पहिले प्रमाणित किया कि सारे संसारके ज्ञानका उद्गम भी संस्कृतका ही साहित्य है। मानो ज्ञान और भाषा दोनोंके द्वारा यह सिद्ध होगया कि संस्कृत (नहीं नहीं) उसकी मातामही वेद–भाषा ही ज्ञान और भाषाका संसारमें प्रचार करनेवाली है और वही आदि सृष्टिमें मूलपुरुषोंको मिली हुई ईश्वरीय विभूति है।

कोई भी भाषा तबतक पक्की नहीं समझी जाती और अधिक दिनतक जीवित नहीं रहती, जबतक उसमें पुस्तकें न सम्पादन कीजाय। पुस्तकें भी अधिक दिनतक कण्ठ नहीं रह सकतीं, जबतक लिख न लीजायं। इसके अतिरिक्त लेखनकलाप्रणालीके विना राज्य और व्यापार आदिकी अच्छी व्यवस्था नहीं हो सकती, क्योंकि लेखन कलाके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुंचा सकताहै। लेखन कलासे साहित्य भी उन्नत होताहै। यह सब चाहे किसी प्रकार हो भी जाय,

१ इन भाषाओंके अन्य सैकडों शब्द इसी ढंगके हमारे पास मौजूद हैं।

पर ज्योतिषविद्याका काम तो विना 'रेखा' 'अङ्क' और 'बीज' चिह्नोंके चल ही नहीं सकता। ज्योतिष ही सबसे आले दरजेका आविष्कार और सभ्यताका उच्चतम प्रमाण है, किन्तु शोकसे कहना पड़ताहै कि वेदोंमें ज्योतिषका पुष्कल वर्णन होते हुए भी पश्चिमात्योंने इस देशके ऋषियोंपर यह भी आक्षेप किया है कि वे लिखना नहीं जानते थे तभी तो वेदोंको कंठ रखते थे, सुनकर पढ़ते थे और इसी लिये श्रुति कहते थे। आज अरबीका लिखना जारी है पर हाफिज होना बड़े इज्जतकी बात समझी जातीहै। यह देखकर क्या हम यह परिणाम निकालें कि हाफिजोंको लिखना नहीं आता? क्या खूब! इन्हें यह खबर नहीं है कि घन जटा लगाकर कहने और कण्ठ करनेका कारण अशुद्ध न होना था। पाठक! यहां हम प्रकरण वश थोड़ासा लिपिके विषयमें भी लिखदेना चाहतेहैं।

इसके अतिरिक्त यदि कोई शंका करे कि वेदभाषा भी किसी दूसरी भाषासे निकली होगी तो उत्तर है और प्रबल उत्तर है कि "वेदभाषा मनुष्यकृत नहीं है, क्योंकि मनुष्यकृत वस्तु कृत्रिम होतीहै। वह नेचुरल अर्थात् स्वाभाविक नहीं होती, किन्तु वेद-भाषा स्वाभाविक अर्थात् सृष्टिक्रमानुकूल है अतः वह मनुष्यकृत नहीं है और न किसीका अपभ्रंश अथवा शाखा है"।

जो मनुष्यकृत नहीं है वह ईश्वरकृत है, अतः वेदभाषा आदिसृष्टिमें ईश्वरदत्त वैज्ञानिक-मूलभाषा है। तीसरे प्रकरणमें हम इस बातको लिपिके साथ २ सिद्ध करेंगे, क्योंकि लिपिके साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

॥ दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ओ३म्।

अक्षरविज्ञान

तीसरा प्रकरण ३

वेदभाषाके वैज्ञानिक अर्थात् स्वाभाविक (कुदरती) होनेमें यह दृढतर प्रमाण है कि उसका एक एक शब्द वैज्ञानिकरीतिसे बनायागया है। हर एक शब्द जिन अक्षरोंसे बना है वे अक्षर स्वयं विज्ञानमय और प्रत्येक अपना अपना स्वाभाविक (कुदरती) अर्थ रखनेवाले हैं। इस बातका प्रमाण हमे दो प्रकारसे मिलता है। एक तो प्रत्येक अक्षरके अर्थसे, दूसरे इन अक्षरोंको लिखनेके लिये, जो सांकेतिक चिह्न बनायेगये हैं उनकी सूरतों और बनावटोंसे। इन दोनों प्रकारोंसे अच्छी तरह ज्ञात होजाताहै कि निस्सन्देह यह भाषा सब भाषाओंकी मूल और आदिसृष्टिमें मिलीहुई ईश्वरप्रदत्त कुदरती भाषा है। इस प्रकरणमें हम प्रत्येक अक्षरका वैज्ञानिक अर्थ दिखलानेका यत्न करेंगे, किन्तु अक्षरार्थ दिखलानेके पूर्व भारतवर्षीय वैदिक लिपिके सम्बन्धमें थोडासा लिखना आवश्यक है (क्योंकि वैदिक लिपिका अक्षरार्थसे घनिष्ठ सम्बन्ध है) अतः यह प्रकरण हम लिपिविवरणसे ही आरम्भ करते है।

भारतवर्षीय वैदिक लिपि जिस प्रकार भाषापर विवाद है उसी प्रकार लिपिपर भी आक्षेप है। योरोपीय विद्वान् कहतेहैं कि प्राचीन भारतवासी लिखना नहीं जानते थे। 'भारतवासी लिखना नहीं जानते थे' यह बात क्या उनके शास्त्रियों ने कहीहै ? जब ऐसा प्रश्न कियाजाता है तो बात बनाकर कहते हैं कि कोई बहुत प्राचीन पुस्तक, शिलालेख अथवा ताम्रपत्र आदि नहीं पाये जाते। हम कहतेहैं चाहे पुस्तक रद्दहोने फटजाने और जलादेने के कारण एक भी पुरानी न मिले और चाहे शिलालेख और ताम्रपत्र खोदवाये न जाने के कारण अथवा दबजाने या गडजादेने या न लिखवाये जाने

आदिके कारण न मिलें पर आज भारतवर्षमें पुरानेसे पुराने बल्कि संसारमें सबसे पुराने साहित्य 'वेद' से लेकर चाणक्य नीतितक बराबर लिखनेकी क्रियाका वर्णन पायाजाताहै, जो आगे हम अवलोकनार्थ लिखतेहैं। वेदके इस मन्त्रमें कि 'उतत्व' पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्' 'पश्यन् ददर्श वाचम्' और 'शृणोति वाचम्' पद साफ आये हैं, जिनका अर्थ(पश्यन्को लेकर) भाषाको बाचना पढना और सुनना होताहै,इसके अतिरिक्त वेदोंमें चक्र १, त्रिभुज २, अक्ष ३, अक्षर ४, परिधय ५, ज्योतिषः ६, चित्र ७, संख्या ८, परिधि ९, लिखिन् १०, लिखात् ११, लिखितम्१२, और कोटि १३, अर्व १४, योग १५, भाग १६,आदि शब्द प्रत्यक्ष आतेहैं, ये शब्द ज्योतिष शास्त्रको सिद्ध करतेहैं, जिसमें रेखा अंक और बीज तीनों प्रकारकी लिपियोंका काम पडताहै। आगे हम एक मन्त्र देकर तीन बातें सिद्ध करतेहैं,एक तो अरबों करोडोंकी संख्या,दूसरे संख्या लिखनेकी विधि, तीसरे ज्योतिष शास्त्रकी एक भूमिका। वह मन्त्र यह है—

'शत ते अयुत हायनान् द्वे युगे त्रीणि
चत्वारि कृण्म, अथर्व ८।४।२१

वे शत, दश, सहस्र, दो, तीन, चार मिलकर समय (वर्ष) करतेहैं।

एक सौ और दश सहस्र अर्थात् दश लाख तक लिखकर (किस अंकपर इतना लिखकर? सो नहीं, इससे समझना चाहिये कि शून्य लिखकर) उसमें दो तीन और चारको जोडो तो ४३२०००००० चार अरब बत्तीस करोड होताहै। यह संख्या १४ मन्वन्तरों अर्थात् एक ब्राह्मदिनकी है। इतने दिन सृष्टि रहतीहै। इसीका वर्णन मनुस्मृति और सूर्य सिद्धान्तमें आया है। अब हम पूछतेहैं कि जिस वेदमें इतनी इतनी बडी संख्यायें हों और उनसे लिख-

---

० १ (४।३६।४ और ७।५६।२३ अथर्व ९।२४।२२) २ (अथ० ८।९।१४) ३ (ऋ० १।३०।१४) ४ (ऋ० १।४४।१५) ५ (ऋ० १०।९०।११) ६ (ऋ० १।२३।१५) ७ (ता पू ५।४।१४) ८ (अथ० ४।२५।२) ९ (अथ० ७।११।१) १० (अथ० २०।१३२।८) ११ (अथ० १४।२।६८) १२ (अथ० (१२।३ १२) १३, १४, १५ (अथर्व ८।४।२१) १६, (समानां प्रथा गद्वो धन भाग)।

नेका तरीका अर्थात् ' शून्य रखकर अङ्क रखनेकी विधि मालूम होनी हो तथा ज्योतिषके* मूल ग्रहोंकी आयुका वर्णन हो उनके लिये यह कल्पना करनी कि उनमें लिखनेकी विद्या नहीं थी, अथवा उन ऋषियोंको जिनका आधार वेद था, उनके लिये कहना कि वे लिखना नहीं जानते थे ? घोर पाप है ।

गोपथ ब्राह्मण १ । १ । १६ में लिखा है कि–

'ओमित्येतदक्षरमपश्यत्'–अर्थात् (ओम् इति एतत् अक्षरम् अपश्यत्–) ' ओ३म् ' इस अक्षरको देखताहै ।

मनु कहतेहैं कि–'बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्(मनु ८ । १६८) अर्थात् बलात्कारसे दिया हुआ भोगा हुआ लिखाया हुआ,–दूसरी जगह कहतेहैं कि–

ऋणदातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत् पुनः क्रियाम् ।

स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ मनु ८।१५४ ॥

जो ऋण देनेको असमर्थ है और फिरसे हिसाब करना चाहे वह चढाहुआ सूद देकर दूसरा 'करण' (कागज तमस्सुक) बदलदेवे । दूसरी जगह कहतेहैं ।

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ।

'समुद्रे' नाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् । मनु० ८।१८८

'इन सब धरोहरमें सही करनेकी यह विधि है । अर्थात् (मुहर) चिह्न-सहित दियेहुएमें यदि 'मुद्रा' (मुहर) छापको हरण न करे तो कुछ शङ्का नहीं पाईजाती' । मुद्राका अर्थ छाप है और छाप अंगूठी आदिकी लगाई जातीहै । पूर्वकालमें अंगूठियोंपर बे सिर पैर निशान न रहते थे, किन्तु नाम खुदाहुआ होता था । आओ हम तुम्हें वाल्मीकिरामायणमें दिखलाये–

वानरोहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।

रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ सुन्दर ३०।९

सीताजीसे हनुमान् कहतेहैं कि हे सीते ! मैं वानर रामचन्द्रजीका दूत हूँ, यह रामनाम अङ्कित अंगूठीको देखिये' । महाभारतका यह प्रसङ्ग तो मश-

---

* ' मा असि प्रमा असि प्रतिमा असि ' इन वाक्योंमें वेदीकी रेखा नापनेके ' स्केल ' ' परकाल ' ' गज ' वगैरहका इशारह है ।

दूर ही है कि 'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने' अर्थात् काव्यको लिखनेके लिये गणेशजीको बुलाया । देखो महा० आदि० १।७४। क्या अब भी कोई शंका रहजातीहै कि प्राचीन आर्य लिखना नहीं जानते थे? विना लिखना जाने कहीं अंगूठीपर अक्षर बन सकतेहैं? अब हम अधिक प्रमाण न देंगे क्यों कि महाभारतकी कथा तो जानते ही हो कि भारत लिखनेके लिये गणेशजी आये थे। किन्तु एक व्यंग्यका भी जवाब देना उचित जान पडताहै, जो बहुधा योरोपीय पण्डित कहा करतेहैं कि भारतमें लिखना बैबीलनसे आया । इसके उत्तरमें हम केवल एक श्लोक सूर्यसिद्धान्तका लिखे देतेहैं, जिससे ज्ञात होजायगा कि भारतवासी ज्योतिषको (जो विना लिखनेके बन नहीं सकता) उस वक्त जानते थे, जब बैबीलन क्या सारी पृथिवी सोरही थी ।

सूर्यसिद्धान्त कब बना सो सुनो–

कल्पादस्माच मनवः षड् व्यतीताः ससंधयः ।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृत युगम् ।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिंडयेत् ॥

(सूर्यसिद्धान्त)

इस कल्पके छे मनु सन्धियोंके सहित व्यतीत होचुके हैं और वैवस्वत मनुकी सत्ताईस चतुर्युगी भी बीत गई हैं और इस अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका सत्ययुग भी बीतचुका है, इस कालमें यह ग्रन्थ बना । मानो त्रेताके आदिमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है । त्रेताके १२९६००० और द्वापरके ८६४००० और आजतक कलिके बीतेहुए५०००कुल जोडकर २१६५००० इक्कीस लाख पैंसठ हजारवर्ष हुये तब सूर्य सिद्धान्त लिखागया था । इसीसे समझ सकतेहो कि यहां लिखना कबसे जारी है । क्योंकि ज्योतिषके साथ गणित और गणितके साथ लिपिका होना अनिवार्य है, किन्तु सवाल यह है कि (१) लिपिका प्रादुर्भाव क्यों और कैसे हुआ और (२) आज जो अक्षर भारतमें नागरीलिपिके नामसे चलतेहैं यहींके बने हैं या अन्य

देशसे लिये गयेहैं ? (३) वे मूल अक्षर किस आकार प्रकारके थे ? इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर देकर इस विषयको समाप्त करतेहैं।

लिपिका आविष्कार भारतमें ही हुआ है

दूसरे प्रश्नका उत्तर यहांके विद्वानोंने देदिया है और सिद्ध करदिया है कि यहां जो आजकल अक्षर प्रचलित हैं, किसी देशसे नहीं लिये गये किन्तु ये यहींके अक्षर हैं। इस विषयमें महाशय बार्हस्पत्यजी काशीने अच्छी खोज कियी है। उन्होंने प्राचीन ब्राह्मी लिपि (जोइसदेशमें पाणिनिके समयमें लिखीजाती थी) से लेकर और अशोक लिपिके साथ सम्बन्ध जोडती हुई तथा यही लिपि वर्त्तमानलिपिके रूपमें किस प्रकार आई ? इस गहन विषयको एक सारणीके द्वारा समझा दिया है, जिसको हमने सरस्वती पत्रसे लेकर यहां लगा दिया है। इस सारिणीसे सिद्ध होजाता है कि यहां वालोंने लिखना किसीसे नहीं सीखा किन्तु स्वयं ईजाद किया था।

लिपि आविष्कारका कारण

अब पहिला प्रश्नहै कि लिपि क्यों ईजाद की गई ? हमको वेदोंके अवलोकनसे पता लगता है कि उनमें ज्योतिषका वर्णन बहुत है। ज्योतिषपर ऋषियोंकी श्रद्धाभी थी, क्योंकि उससे आस्तिकता अधिक बढती है। आस्तिकता ही नहीं बढती किन्तु ज्योतिष, ईश्वरका साक्षात्कार करा देता है। जिस समय आप इस अनन्त आकाशमें इसका अन्त लेनेके लिये एक बिन्दुसे रेखा दूरतक खींचें और उस दिशामें अन्त न पाकर नीचेकी दिशामें जायँ वहा भी अन्त न पाकर बायें दहिने ऊपर नीचे होते हुए हर तरफ जायँ थोडी देरमें थक जायँगे और अन्त न मिलेगा पर अब आप नीचे देखें कि आपकी इस कल्पित रेखाने क्या रूप धारण किया है। वह रूप यह है।
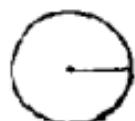
देखिये यह रेखा गणितका प्रथमसाध्य बन गया और त्रिभुज आदि अनेकों कोणों और रेखाओंका उद्गम होगया।इसीसे आकाश और पृथिवीकी नाप होतीहै और ज्योतिषका मूल, जिसपर ज्योतिषवृक्ष खडा है,यही है। इस विद्याके सिद्ध

करनेमें तीन प्रकारके चिह्नोंकी आवश्यकता होती है। एक तो गिन्तीसम्बन्धी, जिससे दो चार सौ पचास मालूम हों। दूसरे दिशासम्बन्धी, जिससे इधर उधर आडा टेढा सीधा गोल आदि मालूम हो और तीसरा संज्ञासम्बन्धी, जिससे सूर्य चन्द्र नदी पहाड पृथ्वी ऊंचा नीचा लाल पीला हाथी घोडा बिन्दु रेखा एक दो आदि 'नाम' मालूम हों। इन्हीं तीनों आवश्यकताओंके लिये संकेतों, चिह्नों या उन उन पदार्थोंसे जो अभिप्राय है उसी अभिप्रायके चित्रोंकी सृष्टि हुई है। इन्हीं तीनों चिह्नोंका नाम अङ्क, रेखा और बीज पड़ा है। एक दोके सूचित करानेवाले चिह्नोंका नाम 'अङ्क' ऊपर नीचे सीधे टेढे गोल त्रिकोण सूचित करानेवाले चिह्नोंका नाम 'रेखा' और जिसको अंक तथा रेखामें बतायाजाताहै उस मैं, तुम, सूर्य, चन्द्र आदिके चिह्नोंका नाम 'बीज' है। यदि कोई अकस्मात् कहउठे कि 'तीन गोल' तो सुननेवाला कहेगा 'क्या तीन गोल?' जब वह कहेगा कि 'नीबू' तब समझमें आजायगा कि 'तीन गोल नीबू' यहां 'तीन' अंक है 'गोल' रेखा है और 'नीबू' बीज है। इन्हीं तीनों रूपोंसे लिपि प्रचलित हुईहै। अंक सारे गणितमें काम आतेहैं, रेखायें चित्रों और क्षेत्रोंमें काम आतीहैं और बीज, जिनको अक्षर भी कहतेहैं (क्योंकि बीजका नाश नहीं होता) संज्ञाओंमें काम आतेहैं। संसारमें जितनी संज्ञा हैं उन्हीं बीजाक्षरोंसे लिखी जातीहैं * तात्पर्य यह कि लिपिकी उत्पत्तिका कारण ज्योतिष है।

यद्यपि मूल लिपिके असली रूप अब नहीं मिलते किन्तु उनके अस्थिपञ्जरों अक्षरोंके आकार (जो सारिणीमें दियेगये हैं) से मूलरूपका अनुसन्धान होसकताहै। अनुसन्धान करनेके लिये 'अक्षरों'के साथ ही पैदा होनेवाले, 'अङ्क' और 'रेखा' हमको सुगम रास्ता बता रहेहैं, उसी मार्गसे हम उनके असली रूप तक पहुँच सकतेहैं।

---

* भाषाकी संज्ञाय सब ६९ आवाजोंके मेलसे बनती है। जिनकी मिश्र संख्या ६३ है और वे सब वर्ण या अक्षरोंके नामसे प्रचलित हैं, इन्हीं ६३ आवाजोंसे संसारकी सब संज्ञायें, सब नाम बने हैं अतएव ऋषियोंने इन ६३ को ही बीज अक्षर मानकर इन्हींके अर्थोंके चित्रबनाकर बीज गणितका काम चलाया था।

वीज ।

। ी ँ ॆ ॊ · ॡ :

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ

ऌ ए ऐ ओ औ अं अः

क ख ग घ ङ च छ ज झ

ञ ट ठ ड ढ ण त थ द

ध न प फ [illegible] भ म

य र ल व श ष स ह क्ष

त्र ज्ञ ळ

अङ्क ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

रेखा ।

बिन्दु रेखा परिधि

जिस प्रकार एकका सुन्दर चित्र '।' यह है, दोका '=' यह, तीनका '≡' यह, चारका '॥' यह, और पांचका '⫶' यह है, (आदिमें १, २, ३, ४, ५के रूप ऐसे ही थे) उसी प्रकार बिन्दुका '.' यह, रेखाका '——' यह और परिधिका '◯' यह है। ऐसे ही अकार, इकार उकार आदिके अभिप्रायों, अर्थों वा तात्पर्य्योंके चित्र अर्थात् वैदिक लिपिके अक्षर वा वर्ण भी हैं। जैसा कि आपको आगे चलकर ज्ञात हो जायगा। इसे तीसरे प्रश्नका उत्तर समझो।

अक्षर*विज्ञान।

एक एक परमाणुसे पृथ्वी बनी है, अतः पृथ्वीमें वही गुण हैं, जो परमाणुओंमें थे। ऐसा नहीं हो सकता कि पृथ्वीमें कुछ ऐसे भी गुण आगये हों, जो परमाणुओंमें नहीं थे। इसी प्रकार भाषारूप पृथ्वी भी अक्षररूप परमाणुसे बनी है। अक्षर शब्दके उस टुकडेको कहतेहैं जिसका फिर टुकडा न हो सके। आज हम मनुष्यकी भाषा सार्थक (अर्थयुक्त) देखतेहैं तो क्या भाषाके बीज, कारण और उपादानरूप उन अक्षरोंका कुछ अर्थ न होगा! यदि अक्षरोंका कोई अर्थ न हो तो कहना पडेगा कि भाषा कृत्रिम है अर्थात् अभावसे भावमें आई है, मनुष्यरचित है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। भाषा उत्पन्न होनेके पूर्व उसके कारणरूप अक्षर आकाशमें विद्यमान थे, क्योंकि आकाश अक्षरों (शब्दों) का कारण है। अक्षरोंके ही योगसे 'धातु' और धातुओंसे 'शब्द' और 'वाक्य' बनतेहैं। इससे ज्ञात होताहै कि ये सार्थक हैं।

आकाशका गुण शब्द है, जो अक्षररूपसे नित्य व्याप्त रहताहै, किन्तु ऊँच नीच भावसे उसके सात भाग हैं, जिन्हें स्वर अर्थात् (स रि ग म प ध नी) कहतेहैं उसी शब्दके स्थान प्रयत्नभेदसे १९ विभाग और हैं, जिनको अक्षर कहतेहैं। इन्हीं १९ के संकर-संयोगसे ६२ या ६३ या

* 'अक्षर' नाम भाषाका भी है। निरुक्तकार यास्क 'ऋचोअक्षरेपरमे व्योमन' मन्त्रकी व्याख्यामें 'अक्षर' का अर्थ 'वागितिशाकपूणिः प्रमाण लिखकर' वाकपूणिके मतसे वाक् अर्थात् वाणी करते हैं। इधर अक्षर पद बीज चिह्नोंके लियेभी आता है। इन्हीं दोनों अभिप्रायोंको ध्यानमें रखकर इस पुस्तकका नाम 'अक्षर विज्ञान' रक्खा गया है।

६४ अथवा और अनेक अक्षर बनजातेहैं * । यही १९ अपने विकृतरूपसे संसारभरमें व्याप्त पायेजातेहैं । मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सितार, ढोल, खट खट, टन टन, काँव काँव, बं ब, बाँ, चिउ चिउ, चूँ चूँ, आदि जितने शब्द हैं, स्थान प्रयत्नके कारण उन्हीं १९ के ही भेद सुनाई पडतेहैं । इससे ज्ञात होताहै कि इनका नाश नहीं है, इसी लिये ये अक्षर कहलातेहैं और अपना स्वय अर्थ रखतेहैं । वेद कहताहै कि "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति" अर्थात् ऋचायें (ज्ञानयुक्त सार्थक वाक्य) परम अक्षर (अविनाशी) आकाशमें ठहरी हैं, जिसमें सब देवता (निरुक्तके प्रमाणसे सब 'विषय') ठहरे हैं । जो उन अक्षरोंको नहीं जानता वह वाक्य समूहोंसे क्या लाभ उठायेगा ? वह 'अक्षर' क्या है ? निरुक्तकार यास्क कहतेहैं, हमारी समझमें तो आताहै कि वह अक्षर ओम् है * पर 'वागिति शाकपूणिः' शाकपूणि अक्षरका अर्थ 'वाणी' करतेहैं ।

यहा भाषाप्रकरणमें यह मन्त्र कहताहै कि 'सब' ऋचायें (वाक्यासमूह) उस परम अक्षरमें ठहरी हैं, जिसमे देवता (अर्थज्ञान) ठहरे हैं, जबतक उसे न जानो, केवल ऋचाओंसे कुछ फायदा नहीं है । वह अक्षर वाणी है । वाणीके बीज समस्त अक्षर ज्ञानके साथ आकाशमें ठहरे हैं, मानो शब्द,

---

* अरबी, फारसीके 'जे' 'से' 'गैन' आदि कुछ नहीं है, वे संस्कृतके 'झ' से 'जे,' 'क्ष' अथवा 'स' से 'से,' 'ष' अथवा 'घ' से 'गैन' होगया है।

* 'ओ३म्' यह उसी अकारकी, तीनों सीमाओंको दिखलाता है और समस्त वाणीके विषयोंको अपने अन्तर्गत कर लेता है । वाणीकी सीमा कण्ठ, ओष्ठ और तालुगत नासाछिद्र है । कण्ठ (जहासे अकारका आरम्भ होता है) उसके परे वाणीकीगति नहीं है । उसके परे हकार है, किन्तु वह विना अकारके कुछ भी नहीं है । ओष्ठ (जहाँसे उ का उच्चारण होता है) के आगे भी कोई स्थान नहीं है । तालुगत नासाछिद्र (जो सानुनासिक ञ, ण, न, ङ, म, का स्थान है और जहाँसे अन्तिम सानुनासिक मकार निकलता है) के आगे भी कोई स्थान नहीं है । इस प्रकारसे समस्त वाणीकी सीमाको अपने भीतर लेकर यह 'ओम्' सर्व, सर्वेश्वर सर्वव्यापक सर्वाधार आदि अर्थ पैदा करताहै । ये अर्थ सब ईश्वरमें घट जाते हैं इसलिये यह 'ओ३म्' उस परमेश्वरका प्रधान नाम है ।

ध्वनिके साथ आकाशका गुण होकर उसमें स्थित है। इसलिये उन अक्षरों और उनके अर्थोंको जानो।

योगशास्त्रमें पतञ्जलिमुनि कहतेहैं कि–

'शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्, योग० ३।१७ अर्थात् शब्द अर्थज्ञानोंके संयोगविभागमें संयम करनेसे सब प्राणियोंकी भाषा ज्ञात होतीहै। मतलब यह कि जितना शब्दसमूह है, चाहे प्राणियोंकी भाषामें हो या वाद्यध्वनिमें, सब उन्हीं मूल अक्षरोंके अन्तर्गत है।कोई भी शब्द तोडो और जोडो, उन्हीं मूल अक्षरोंको पाओगे। बस उनके ही संयमसे सृष्टिनियमके अनुसार,विज्ञानके अनुसार समस्त शब्दोंका कुदरती ज्ञान प्राप्त होगा। इसीकी पुष्टिमें एक ट्रीनिचनामक योरोपियन विद्वान् भी कहताहै कि'–

'बच्चे स्वाभाविक ही यौगिक शब्द बोलते हैं। शब्दोंके वास्तविक अर्थ जाननेके लिये हमे उन शब्दोंके धातुओंको अवश्य जानलेना चाहिये, अन्यथा शब्द निस्तत्व होजायँगे। एक २ शब्द और अक्षरमें कविता भरीहुई है,'। देखो आर. सी. ट्रीनिच डी. डी. रचित 'स्टडी आफ वर्ड्स।

बेशक बच्चे 'मा' को 'मा' पानीको 'पा' आदि कहतेहैं। इनशब्दोंका जब विज्ञानद्वारा अर्थ जाँचाजाताहै तो 'माता' और 'पानी' ही होताहै। बस इन्हीं सब शास्त्र आधारोंको लेकर हमने मूल अक्षरोंका अर्थ दिखलानेकी कोशिश की है। प्रयास प्रथम है, यदि इसपर आगे आगे विज्ञानदृष्टिसे सुधार होतागया तो किसी दिन यह एक अलग विद्या बनजायगी और वैज्ञानिक भाषाको लाकर संसारका उपकार करेगी।

वैदिक वर्णमालामें मुख्यत १९ अक्षर हैं। यही परस्परके मिश्रणसे ६३ होजातेहैं। इन १९ मेंसे जितने अक्षर केवल प्रयत्न अर्थात् मुख जिह्वाके इधर उधर हिलाने, सिकोडने और फैलानेसे बोलेजातेहैं और किसी विशेष स्थानसे सम्बन्ध नहीं रखते वे'स्वर' और जिनके उच्चारणमें स्थान और प्रयत्न दोनोंकी सहायता लेनी पडतीहै वे 'व्यञ्जन' हैं। इन उन्नीसमेंसेः–

अ, इ, उ, ऋ, लृ, ँ, ं, ये सात स्वर हैं और क, ग,च, ज, ट,ड,

त, द, प, ब, श और ळ ये बारह व्यंजन हैं । इन्हीं दोनोंके योगसे ६३ अक्षर इस प्रकार होतेहैं ।

आ, ई, ऊ, आदि दीर्घ स्वरोंको, उपरोक्त अ, इ, उ, आदि ह्रस्व स्वरोंमें, उन्ही उन्ही ह्रस्व स्वरोंकी एक एक मात्रा बढाकर, दीर्घ रूप दिया गया है । इसी प्रकार आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, आदि नौ दीर्घ स्वरोंमें ॡको छोड़कर उन्हीं उन्हींकी एक एक ह्रस्व मात्रा बढानेसे प्लुत-रूप होताहै और सब स्वर इस प्रकारसेः—

अ, आ, आ३ । इ, ई, ई३ । उ, ऊ, ऊ३ । ऋ, ॠ, ॠ३ । ऌ, ॡ ३ । ए, ए ३ । ऐ, ऐ ३ । ओ, ओ ३ । औ, औ ३ । अं । अः । चौबीस होजातेहैं । इनमें 'अ' 'अ' मिलकर 'आ' और 'आ' 'अ' मिलकर 'आ३' हुआ है। इसी प्रकार 'इ' 'उ' 'ऋ' 'ऌ' मेंभी समझना चाहिये। 'अ' और 'इ' के मिश्रणसे 'ए', 'आ' 'ई' के मिश्रणसे 'ऐ', 'अ' 'उ' के मिश्रणसे 'ओ' और 'आ' 'ऊ' के मिश्रणसे 'औ' बना है ।

ञ, ण, न, ङ, म, और 'म्बुं' (५७) जिनको सानुनासिक कहतेहैं । (ं) इस अनुस्वारसे बने हैं और ः 'इस विसर्गमें 'अ' के जोडनेसे 'ह' बना है, किन्तु यह अक्षर बहुत ही विलक्षण है । क च ज ट ड त द प ब के साथ 'ह' जोडनेसे ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ होतेहैं और ये पाचो वर्ग पांच पांच अक्षरके होकर २५ अक्षर होजातेहैं ।

ई अ मिलकर 'य' 'ऋ' अ मिलकर 'र' ऌ अ मिलकर 'ल' और उ अ मिलकर 'व' बना है ।

'ष' और 'स' उसी एक 'श' के स्थानभेदसे रूपान्तर हैं। 'क्ष' 'त्र' 'ज्ञ' भी (क ष) (त र) और (ज ञ) के मिश्रणसे बने हैं ।

ळ प्रायः समस्त स्थानों और सब प्रयत्नोंसे बना है

इस प्रकारसे २४ स्वर २५ वर्ग और (य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ ळ१७) १३ स्फुट अक्षर मिलकर ६२ अक्षर बने हैं । इन्हींमें एक अर्धचन्द्र (जो अनुस्वारका ही रूप है) जोडनेसे ६३ अक्षर होजाते हैं किन्तु इनके मूळ वही उपरोक्त उन्नीस ही अक्षर हैं । उन उन्नीसका भी मूल यदि ध्यानसे

देखो तो केवल एक 'अकार' ही है * । यह अकार ही अपने स्थान और प्रयत्नभेदसे इतने प्रकारका होगया है । उदाहरणार्थ आप ओष्ठ बन्द करके 'अकार' का उच्चारण करें तो 'पकार' होजायगा, और इसी तरह 'क' स्थानमें यदि जिह्वा लगाकर 'अकार' का उच्चारण करें तो 'क' सुनाई पडेगा ऐसे ही सब अक्षरोंमें समझना चाहिये । तात्पर्य यह कि समस्त अक्षर समस्त शब्दसमूह और सारा ध्वनि समूह उसी अकारका स्थान प्रयत्नभेदसे कार्य्य अर्थात् रूपान्तर है और आप स्वयं सबमें विराजमान है । जबतक उसे न जोडो कोई वर्ण, न तो कहते बने और न समझाई पडे । इसी लिये अकारका अर्थ भी 'सब' 'कुल' 'पूर्ण 'व्यापक' 'अव्यय' 'एक' 'अखण्ड' आदि होताहै, किन्तु यह अपने अस्तित्वसे दूसरोंका अभाव बतलाताहै (क्यों कि दूसरे सब इसीसे बने हैं) अतएव दूसरे अक्षरोंका अभाव सूचित करनेसे इस अकारका अर्थ 'अभाव' 'नहीं' 'शून्य' आदि भी होताहै । इसका निजका 'अस्तित्व' पहिला अर्थ और दूसरोंका 'नास्तित्व' दूसरा अर्थ होताहै । आओ इस बातका भेद समझादें–

'अ'

'अ' इस ध्वनिके बोलते वक्त जिह्वा सम और मुख चारों ओरसे एक समान खुलाहुआ रहताहै । मुखमार्गसे अकाररूपी ध्वनि * मूलतालुसे लेकर बाहरतक आ ३... करतीहुई ' | ' इस आकारकी होकर निकलतीहै । यह चिह्न अकार शब्दका निर्भ्रान्त रूपहै । हम ऊपर दर्शा चुके हैं कि विना अकारके कोई अक्षर बोला नहीं जा सकता इसी, लिये प्रत्येक अक्षरके चित्रमें ' | ' यह अकारका मूल दण्ड विराजमान है । जब कोई अक्षर हलन्त लिखाजाताहै तो यही स्तम्भ लँगडा कियाजाताहै, यथा–क्, थ्, आदि । इसी भाँति जब कोई मात्रा (स्वर) किसी अक्षरमें लगाई जाती हो वह भी इसीके ऊपर लगाई जातीहै यथा–के, की, कु, आदि ।

* हम ऊपर १९ मूलाक्षर कह आये हैं सो ठीक हैं, क्योंकि स्थान प्रयत्न भेदसे नानारूप भिन्नभिन्न होता है । पृथिवीको कोई परमाणु नहीं कहता, यद्यपि वह परमाणुसे बनी है । इसी भाँति यद्यपि सबका मूल अकार है तथापि यह रूप उसका प्रलयकालमें ही रहता है सृष्टिमें तो संयोगवियोगके कारण १९ अक्षर रहते हैं । और यही मूल कहलाते हैं

और इसी प्रकार जब कोई अक्षर किसी अक्षरमें संयुक्त कियाजाताहै तो जो अक्षर आधा होताहै उसमें '|' यह स्तम्भ लगाये विना ही दूसरा अक्षर जोडतेहैं । यदि दूसरा भी आधा लिखना होताहै तो तीसरे अक्षरमें अकार स्तम्भ मिलतेहैं, यथा—'(क) न्या' '(वि) न्ध्या' आदि। यह प्रक्रिया आजकी नहीं है बल्कि पुरानीसे भी पुरानी जो लिपि मिलीहै उसमें भी यही कौशल पायाजाताहै । प्राचीन लिपिकी सारणी जो पहिले दीगईहै उसके प्रथम खाने (सन् २००) की तीसरी पंक्तिको देखिये वहां 'कि' अक्षर लिखा है । ककारमें जो इकार जोडागया है, वह उसी स्तम्भसे मिलाहुआ है । उक्त सारणीमें अन्यत्र भी इसी प्रकार पायाजाताहै । इसलिये यह झगडा तय होगया और सिद्ध होगया कि अकारका मूल रूप यही स्तम्भ है क्यों कि दीर्घके लिये तो वह आता ही है । साथ ही यह भी ज्ञात होगया कि यह दूसरे ही अक्षरोंके साथ इस प्रकारका पायाजाताहै, पर जब स्वयं 'अ' रूपसे आताहै तो '|' ऐसा नहीं किन्तु 'अ' ऐसा लिखा जाताहै। इसी लिये हमने उसके उच्चारण करनेके विषयमें दो बातें कही थीं, अर्थात्

१ जिह्वा सीधी सम रेखापर रहतीहै ।

२ मुख चारों ओरसे समान खुलाहुआ रहताहै ।

नम्बर एकका वर्णन अर्थात् सीधी रेखाका वर्णन तो आप पढचुके अब आइये नम्बर दोका वर्णन भी सुनलें—

यदि आप मुहं चारों ओरसे समान रूपसे खोलें तो उसका चित्र यही होगा।

हम अकारके पूर्ववर्णनमें जहा उसकी व्यापकता और पूर्णता तथा अखण्ड-रूपता बतला आये है वहां उसके वैज्ञानिक कार्योंके कारण ही हमें उसका वह अर्थ करना पडा है । अब आप यदि पूर्ण, सर्वव्यापक, अखण्ड आदि भावोंका चित्र बनावें तो उपरोक्त शून्याकारसे अच्छा चित्र दूसरा न हो सकेगा । चित्रकी ओर देखने ही उसकी आकृति अपनी पूर्णता व्यापकता और मुखाकृति दोनों बातोंको एक साथ कहदेतीहै ।

अकारके इन दोनों चिह्नोंके मिलानेसे [glyph] यह रूप होताहै और अपने

अपने अभिप्रायका अर्थ अपने रूपसे कहने लगताहै। जैसा हमने पहिले कहा था कि अकार अपनी व्यापकता और सर्वस्वतासे अन्य अक्षरोंका एक प्रकारसे अभाव भी सूचित कराताहै, इसलिये यह कभी२ अभाव अर्थमें भी आताहै। क्या अभावका '०' इससे अच्छा चित्र बन सकेगा? नहीं अतः ऊपरके पूर्ण चित्रमे यह भी घटजाताहै, किन्तु व्याकरणकी सुविधाके लिये ह्रस्व अकारको 'नहीं' अर्थमें, यथा—अशुद्ध, अयोग्य, अभाव आदि। और दीर्घ अकारको 'समस्त' अर्थमें, यथा—'आलम' 'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ताम्, 'आसमुद्रात्तु पश्चिमात्' आदि कियागया है जो युक्तिसगत है, क्योंकि समस्त अर्थात् पूर्णसे अभाव स्वयं छोटा है। इसी लिये ह्रस्व अकार 'अभाव' और दीर्घ 'समस्त' अर्थमें आया है। इस अर्थके अतिरिक्त कारण कार्यभावको लक्ष्यमे रखकर स्वभावतः बिना किसी दबावके यदि और कोई अर्थ निकलता हो तो निकालना चाहिये और यही शैली (कायदा) समस्त अक्षरोंमे समझनी चाहिये।

'इ' 'ए' 'य'

अकारके बाद ही उसके नजदीक 'इ' का उच्चारण-है। 'इ' कुछ नहीं है वही 'अ' नीचेकी ओर आकर नीचेके ही ओष्ठकी सहायतासे 'इ' रूप होगया है। अकारसे ही इसकी प्रथम उत्पत्ति है और उसके अत्यन्त ही निकट है, इसलिये यह 'इकार' अपने पिता अकारका 'वाला' अर्थात् अकारका सम्बन्धी कहलाताहै, इसीसे इसका अर्थ 'वाला' होता है। वालाका मतलब इस प्रकार समझना चाहिये कि जैसे मकानवाला कुतेवाला आदि। अंगरेजीका 'er' क्रियामें लगानेसे जो (Speaker Worker) आदि अर्थ पैदा करताहै, यहां 'इ' वही अर्थ पैदा करताहै। जैसे 'व' का अर्थ 'गति' है। किन्तु 'व' में 'इ' लगानेसे 'वि' का अर्थ गतिवाला होना', 'पा=रक्षा करना' है, किन्तु 'पि' का अर्थ रक्षा करनेवाला होजाताहै। इससे सिद्ध अकार एक सम शब्द था, उसमें व्यग्र उत्पन्न करनेसे—गति पैदा करनेसे 'इ' हुआ है। अर्थात् अकारमे सञ्चालन—परिवर्तन हुआ है तभी इकार बना है इस लिये इकारका अर्थ

'गति' भी है । इसी लिये 'इ' धातु गति अर्थमें आया है। तीसरे इकारके बोलते वक्त मुख शब्द निचले ओष्ठद्वारा मुहसे निकलकर जमीनपर पांवके पास गिरताहै। वह 'उ' की भांति दूरका द्योतक नहीं है, इसलिये इसका अर्थ नजदीक, पास और 'यह' आदि भी है । यथा 'इदम्' 'इहलोके' आदि शब्दोंमें 'इ' अपना भाव प्रकट कररहाहै ।

इसके रूप भी दो हैं ।

पहिला ' ᒣ ' यह है। यह अक्षरका समीपी 'वाला' बतलाते हुए दो रेखाओंको जोडताहै । अर्थात् 'आ रेखाको नीचे लाताहै ।

' दूसरा इ यह है । यह गति बतलाताहै । अकारसे नीचेकी ओर गति हुई है, यही इसमें दिखलाया गया है ।

पहिला रूप 'की' 'धी' में ' ी ' ' ि ' इस प्रकार काम आताहै अर्थात् किसी अक्षरके समीप रहना पडताहै । दूसरा उसका निजका पृथक् रूप गति अर्थके मारक है। गतिका चित्र इस दूसरे रूपसे अच्छा कोई भी चित्रकार बना ही नहीं सकता । अत इसके दोनों रूप ('वाला' और 'गति') को ध्यानमें रखकर बनाये गये हैं ।

'ए' अक्षर अकार और इकारके संयोगसे बना है । दोनों अक्षर एक साथ बोलनेसे 'ए' अक्षर सुनाई पडताहै । अकारसे 'नहीं' और इकारसे 'गति' अर्थात् 'नहीं गति' या 'गतिहीन' 'निश्चल' अथवा 'पूर्ण' (क्योंकि पूर्णमें गति नहीं होती) अर्थ हो आताहै । इसीसे 'एक' आदि प्रख्यात शब्द बनतेहैं, जो पूर्णता अखण्डताके ज्वलन्त साक्षी हैं ।

इसका रूप ' ए ' यह है । इसमें पहिली लकीर 'अ' और दूसरी गतिमान रेखा 'इ' है । दोनोंके संयोगसे यह बना है । जब यह स्वय आताहै (जैसे एक आदिमें) तो इसका यही रूप रहताहै पर जब किसी अक्षरमें मिलता है तो

'के' इस भांति लिखाजाता है । इसके बोलनेमें भी ' ए ' शब्दकी आकृति मुहसे तिरछी निकलती है, इसी लिये यह अक्षरोंपर तिरछा

लिखा भी जाताहै ।

'य' यह अक्षर 'इकार' और 'अकार' के मिश्रणसे बना है । 'इ' और 'अ' एक साथ बोलनेसे 'य' ध्वनि बनजाती है । इकारका अर्थ गति और अकारका अर्थ पूर्ण होताहै । इसलिये यकारका अर्थ हुआ 'गति-पूर्ण' । गति एक जगहसे निकलकर जब दूसरे स्थानमें पहुंचतीहै तभी पूर्ण समझीजातीहै । मानो दूसरेको सूचित करादेतीहै । हम देखतेहैं कि यकार सर्वत्र'यः'अर्थात्'जो' अर्थमें आता है। जोका भावार्थ'भिन्न वस्तु'अथवा 'अन्य वस्तु' विशेष है । जब कहेंगे 'जोजो पदार्थ'तो मालूम होगा कि दूरदूर अनेक पदार्थ हैं । इसीसे पूर्ण गतिका भाव सूचित होताहै । इसका रूप यह है । पहिली रेखा 'इ' और दूसरी 'अ' है । क्यों कि यह 'इ' और 'अ' से ही बना है ।

'उ' 'ओ' 'व'

निचले ओष्ठका कार्य देखनेके बाद ऊपरवाले ओष्ठकी क्रिया भी देखनी चाहिये। उकार प्रधानतया ऊपरवाले और साधारणतया निचले ओष्ठकी सहायता तथा मुंहकी चौडाईको सिकोड (चुनतकर) देनेसे 'उ' बनताहै । 'उ' शब्द मुहसे निकलकर ऊपर ओष्ठके कारण ऊपर ही अनन्त आकाशमें न जाने कहा दूर चला जाताहै। 'उ' बोलते वक्तआपसे आप मालूम होने लगताहै कि यह आगेको निकला हुआ मुह किसी अपनेसे भिन्न दूरस्थित किसी 'दूसरे' का इशारह कररहाहै। इसी लिये उकारका अर्थ'ऊपर' 'दूर' 'वह' 'तथा' और 'and'आदि होताहै। अबतक अनेक स्थानोंमे 'वह चीज लाओ' की जगह 'ऊ' चीज लाओ, कहतेहैं ।

इसके भी दो रूप हैं ' ' यह और ' यह ।

पहिला ऊपरकी सूचना देनेवाला और अंगुली उठाकर दूसरेको बताने वालाहै । यह अंगुलीका चिह्न है । यही 'को' 'खो' में काम आताहै । दूसरा —— 'दूर' 'अन्य' आदि भावसमझानेके लिये जैसे मुहं चुना हुआ

बनाकर आगेको निकालकर जाहिर करतेहै, ठीक उसी अर्थके प्रकाश करनेके लिये उसी समयवाली मुखाकृतिका चित्र बनालिया गया है । इसमेंकी पहिली लकीर मुहंके भीतरका अकार है । कोणका बिन्दु चुना हुआ और लम्बा बाहर निकला हुआ मुहं है तथा उसीसे लगीहुई आडी अधर लकीर शब्दको दूर फेंकतीहैं और 'वह' 'अन्य' 'दूर' आदि अर्थ बतलातीहै । इसके आधे रूप '⌐' इससे 'कु' आदि बनतेहैं ।
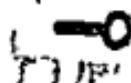
'ओ' यह अकार उकारके संयोगसे बना है । 'अकार'का अर्थ नहीं और उकारका अर्थ 'अन्य' 'दूसरा' है । इसलिये 'ओकार' का अर्थ हुआ 'अन्य नहीं' । 'अन्य नहीं' की अर्थापत्ति होतीहै 'वही' जैसे कहतेहैं कि, 'वही !' अर्थात् दूसरा नहीं ।

इसी लिये यह 'सो' 'यो' आदि शब्दोंमें देखाजाताहै और अर्थ भी 'वही' 'जो' आदि रखताहै इसका रूप 'ो' यह है इसमें अकार और उकार दोनोंके चिह्न मिलेहुए हैं । 'ओ' बोलते वक्त जिस प्रकार आदमी ऊपरको हाथ उठाकर पुकारताहै उसी भाँति यह उद्गीथका चित्र बनाया गयाहै ।

'व' * यह अक्षर उकार और अकारसे बना है । 'उ' और 'अ' एक साथ बोलनेसे 'व' शब्द बनताहै । उकारका अर्थ 'अन्य' है और अकारका अर्थ पूर्ण है इसलिये वकारका अर्थ भी 'पूर्णभिन्न' हुआ । यही कारण है कि सस्कृतसाहित्यमे वकार 'अथवा' अर्थमें आताहै । अथवा पूर्ण भिन्नका ही अनुवाद है । दूसरे उकारका अर्थ दूर भी है । 'दूरता' विना गति विना सञ्चालनके नहीं होती इसलिये वकारका अर्थ गति भी होताहै 'व' धातु ही गति अर्थमें है । पृथिवी बडी गतिमान और गमनवती है इसलिये 'व' गन्ध अर्थमें भी आया है ।

इसका रूप भी '○' इतना भाग उकारका और '।' इतना अकारकी रेखाका लेकर '○|' इस प्रकार बनाया गया है ।

---

* वकारको आजकल य र ल 'व' इस प्रकार रखते हैं । उसे यके बाद रखना चाहिये और य व र ल इस प्रकार पढना चाहिये ।

'ऋ' और 'र'

अ, इ और उ के वर्णनमें तालुसे ओष्ठतकका प्रयत्न दिखला दिया गया है। अब जिह्वाका प्रयत्न दिखलातेहैं। अकारियोंको बुलाते समय जिस प्रकार 'उर्र' 'उर्र' करतेहै अथवा हारमोनियमकी चौथी चाभी खोलनेपर जो ध्वनि होतीहै या मेंढक अथवा झींगुरका जो शब्द है वही ध्वनि 'ऋ' अक्षरकी भी है। इसे कोई 'रि' और कोई 'रु' उच्चारण करतेहैं पर ये दोनों अशुद्ध है। इसके उच्चारणमे जिह्वा तालुसे लग लगकर बार बार छूटतीहै। जितनी जल्दी छूटतीहै उतनी ही जल्दी फिर लगतीहै अर्थात् स्थानको पकडती नहीं है किन्तु निरंतर गतिमान रहतीहैं *। इसकी गतिमे विश्राम नहीं है, इसी लिये इसकी गति अखण्ड, नित्य अतएव सत्य कहलातीहै। इन्हीं दोनों कारणोंसे 'ऋ' अक्षर 'सत्य' और 'गति' दो अर्थोंमें प्रचलित है। इसकी गति बाहरकी ओर है। इसलिये यह बाहर अर्थमें भी आताहै। इन्हीं अर्थोंको ध्यानमें रखकर इसके रूप बनायेगये हैं।

इसके दो रूप है ' ' और

पहिला रूप बाहरकी ओर दानेदार गतिका सूचक है। अर्थात् उस आघातका सूचक है, जो जिह्वाके तालुमें लगनेसे पैदा होतीहै, पर विना अकारके योग यह स्वयं किसी रूपमें नहीं आ सक्ता, इसलिये इसे अकारके साथ दूसरे रूपमे ऊपर दिखलाया गया है। 'ऋ' जब किसी अक्षरके साथ मिलताहै तो अपने पहिले रूपसे, और जब स्वयं आताहै तो दूसरे रूपसे लिखाजाताहै।

ऋकारमें अकार जोडनेसे 'र' शब्द होताहै। 'ऋ' के वर्णनमें इसका अर्थ बाहर और सत्यगति बताया गयाहै। अतः रकार 'बाहर फेंकने' अर्थात् 'देने' और

*स्वरमें निरंतरता रहतीहै पर व्यञ्जनमें नहीं, क्योंकि व्यञ्जनमें जबतक कोई स्वर न मिले, उसका स्पष्ट उच्चारण नहीं हो सक्ता पर स्वरका शब्द तबतक निरन्तर जारी रहताहै, जबतक कि उसका स्थानापन्न कोई दूसरा स्वर न बोलाजाय। हाँ, जानबूझकर मुँह बन्द करलियाजाय तो बेशक बन्द होजायगा।

'सत्यगति' अर्थात् 'अविच्छिन्न अस्तित्व' नाम'रमन'अर्थमे 'लियागया है' जो सारे साहित्यमे प्रचलित है। इसके रूपमें ‾‾ इतना भाग 'ऋ' का और '।' इतना भाग अकारका है। दोनों मिलकर ' ' ऐसा रूप हुआ है।

'ऌ' और 'ल'

ऋकार और ऌकारके उच्चारण और स्थलमें बहुत भेद नहीं है। 'ऋ' बोलने समय शब्दकी गति बाहरकी ओर रहतीहै, किन्तु ऌ बोलते वक्त जिह्वा भीतरकी ओर मुड़जातीहै, जिससे लड़बड़ाहटसी सुनाई पड़ती है, बाकी इनका आकार प्रकार सब एकही है—यह भी अविच्छिन्न गतिमान है, अतएव इसका भी अर्थ सत्यगति होताहै इसी लिये गम् (ऌ) धातु जाने अर्थमें है। हां इसकी गति भीतरकी ओर है इसलिये इसका अर्थ भीतर भी होताहै।

इसके भी ' और ' दो रूप हैं।

पहिला रूप भीतरकी ओर दानेदार गतिको दिखलाताहै, जो जिह्वाके तालुमें बार बार छूनेसे पैदा होतीहै। यह जब किसी अक्षरके साथ मिलताहै तो प्रथम रूपसे मिलताहै किन्तु जब पूर्ण रूपमे आताहै तो दूसरे रूपसे लिखाजाताहै।

ऌकार और अकारके संयोगसे 'ल' बना है। शब्दको बाहर फेंकनेसे जिस तरह ऋकारसे बने हुए रकारका अर्थ 'देना' हुआ है उसी प्रकार शब्दको भीतर फेंकनेके कारण इस ऌकारसे बनेहुए लकारका अर्थ 'लेना' है यही कारण है कि 'रा' धातुका अर्थ देना और 'ला' का अर्थ लेना प्रचलित है।

'ऋ' और 'ऌ' दोनों 'गति' अर्थमें समान हैं, किन्तु 'ऋ' बाहरकी ओर गति करताहै अर्थात् शब्दको मुखसे बाहर फेंकताहै इसलिये उससे बनेहुए रकारका अर्थ 'देना' हुआ है और 'ऌ' भीतरकी ओर गति करताहै अर्थात् शब्द को मुखके अन्दर फेंकताहै इसलिये उससे बनेहुए लकारका अर्थ 'लेना' लियागया है। एकमें जिह्वाका अग्रभाग तालुमें छूकर बाहरकी ओर गति करताहै दूसरेमें भीतरकी ओर गति होतीहै, यही इन दोनोंमें अन्तर है, बाकी

दोनों हरवातमें समान हैं । ' ल ' में ' — ' इतना भाग ' ल्ह ' का और ' । ' इतना अकारका मिलकर ' [illegible] ' यह रूप हुआ है ।

– (अनुस्वार) और ङ, ञ, ण, नें, म, तथा ११

ये सब अक्षर सानुनासिक कहलाते हैं, क्यों कि सानुनासिकका मतलब नासिकासे बोलेजानेवाला होता है । अकारका अन्तिम रूप '–' यह है । इसको अनुस्वार कहते हैं । शेष समस्त सानुनासिक इसीके स्थानभेदसे रूपान्तर है । मुख बन्द करके जब अकार बोला जाता है तो उसका शब्द रूप – हो जाता है । इसी प्रकार कवर्ग स्थानसे नासिकाके द्वारा जो शब्द बोला जाता है वह ' ङ ', चवर्ग स्थानसे ' ञ ', टवर्ग स्थानसे ' ण ' तवर्ग स्थानसे ' न ' और पवर्ग स्थानसे ' म ' होता है–अनुस्वारका ही प्रबल रूप ११ है जब उसकी ध्वनि होती है तब ' ~ ' और जब भारी ध्वनि की जाती है तब ११ यह शब्द होता है पर इसे ' गु ' या ' ग्म ' कहना भूल है ।

अकारका जहा अस्तित्व नष्ट होता है वहींसे अनुस्वार और उसकी सन्तति सानुनासिकोंका जन्म होता है । दूसरे शब्दोंमें अकारके अभावको अनुस्वार और पञ्च कवर्गादिके अभावको सानुनासिक तथा अन्य सबके अभावको ११ कहते हैं । अतएव इन सातों ध्वनियों अर्थात् सातो अक्षरोका अर्थ ' नहीं ' ' अभाव ' अथवा शून्य होता है । क्योंकि अकारका अर्थ सर्व, पूर्ण और समस्त आदि आप पढ आये हैं । शेष कवर्गादिका अर्थ आगे पढेंगे । ये सातों सर्व अक्षरोंका अस्त करके स्वय उदित होते हैं, इसीलिये ये निषेध अर्थमें आये हैं यथा णश=अदर्शने । मा कुरु । न तस्य आदि ।

अनुस्वारका रूप ' ० ' यह है । यह वह छिद्र है जो मुहँके भीतर मूर्धा-स्थानमें नाकसे सम्बन्ध रखता है । इस चित्रको बनाकर चित्रकारने बडी ही कारीगरी की है, क्यों कि इससे ' मूर्धछिद्र ' और ' नहीं ' ' अर्थ '

---

१ मा का अर्थ नापना भी है । (मा अपि प्रमा असि प्रतिमा असि) नापनेको ही प्रमाण कहते हैं, आठ प्रमाणमें अभाव भी एक प्रमाण है ।

दोनों प्रकट होते हैं। छिद्र और अभाव (शून्य) का ' ○ ' यह कैसा उत्तम चित्र है।

सारे सानुनासिक अक्षर इसीको लक्ष्यमें रखकर बनाये गये हैं और सबमें यह बिन्दु अपने वर्गके आदि अक्षरोंके साथ विद्यमान है। यथा ङकारका रूप ' ' यह, ञकारका ' ' यह, णकारका ' ' यह, नकारका ' ' यह, और मकारका ' ' यह रूप है।

१७ के रूपमें अकार और अनुस्वार दोनों दिखलाये गये हैं और शृङ्गी बाजाका चित्र बनादियागया है। यदि छोटे छिद्रको फूंको तो ' अ ' हो जाय और यदि बडे छिद्रको फूंको तो ' ं ' होजाय '। इस चित्रमें भी चित्रकारने कमाल किया है,क्योंकि ' ' यह, मुख और नासाके स्वाभाविक सम्बन्धका स्पष्ट चित्र है।

":" (विसर्ग) और "ह"

विसर्गका उच्चारण नाभिसे होताहै, अर्थात् जहांतक प्राणका संचार है वहांके मूलसे इसकी उत्पत्ति है। इसी लिये यह पूर्णतासूचक होनेसे निश्चयार्थमें आया है। जहांसे यह आताहै वहाँ शब्दका अन्त है, इसलिये यह अन्त अर्थमें भी आताहै। परंतु विना अकारके यह कुछ भी नहीं है, अतः यह अभाव सकोच अर्थमें भी आताहै इसका रूप ' 8 ' यह है। पेटसे गर्दनकी ओर जो पोलाईहै उसका पहिला द्वार कंठहै, दूसरा द्वार बाहरका ओष्ठस्थानीय मुँह है। और दोनोंका रूप ' o ' ऐसा है। विना इन दोनों द्वारोंके इसका उच्चारण नहीं हो सकता। इसमें ' ' यह नाभिसे कण्ठतककी शब्दरेखाका चिह्न भी पूंछकी तरह लटकताहै।

इसी विसर्गमें "अ" जोडनेसे स्पष्ट "ह" होजाताहै। और सर्वत्र निश्चय तथा निषेधार्थमें आताहै। निश्चयार्थ तो इसकी उस शब्दमूलतासे निकलताहै, जो नाभितक प्राणोंकी सीमा और वहांतक इसकी विद्यमानता है

तथा निषेध अर्थ इसलिये लियाजाताहै कि यह अपनेसे आगे शब्दतत्त्वका निषेध करताहै। अर्थात् स्वय शब्दका मूल बनकर अपने लिये निश्चय दिखाताहै और अन्यके लिये निषेध करताहै, मानो समझाता है कि अब मेरे आगे और शब्द नहीं हैं। इसका रूप भी उन्हीं विसर्गोंमें केवल अकारका चिह्न जोडनेसे और नाभि-रेखाको लंबी करनेसे 'ह' इसप्रकार बनताहै।

ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, और भ, ये दश अक्षर इसी हकारकी सहायतासे बने हैं। इन सब अक्षरोंमें इसका सक्षिप्त रूप तथा निषेध-प्रदर्शक अर्थ विद्यमान है, जो आगे चलकर ज्ञात होगा। इस हकारमें यह खूबी है कि जब यह स्वय अपने स्वच्छ "ह" रूपसे आताहै तब निश्चयार्थमें और जब खकारादिके साथ मिलाहुवा आताहै तब निषेध अर्थ करदेताहै। यह भी विज्ञानसिद्ध है, क्यों कि प्रत्यक्षका अर्थ निश्चय और परोक्षका अर्थ सदिग्ध होनेसे अधिकतर निषेध ही है। तात्पर्य यह कि हकार बडा ही उपयोगी अक्षर है, इसी लिये हमने पहिले कहा था कि हकार बडा विचित्र अक्षर है।

"क" और "ख"

कवर्गसे लेकर पवर्गतक पचीस अक्षर हैं। इनमे पाच सानुनासिक हैं, जो नकारार्थमें बतलाये गये हैं। बाकी बीसमें दश ककारादि स्वय प्रकाशित और दश खकारादि सयुक्ताक्षर हैं, जो हकारके योगसे बने हैं। जिस प्रकार 'क' में 'ह' मिलकर 'ख' होताहै, उसी प्रकार भकार पर्यंत क्रम है। हम हकारके वर्णनमें लिख आये हैं कि जब यह किसी अन्य अक्षरके साथ मिलताहै तब स्वय गुम होकर उसका अभाव अर्थ करदेताहै। यही दशा इन समस्त द्वितीय और चतुर्थअक्षरोंकी है। खकार ककारके विरुद्ध और घकार गकारके विरुद्ध असर (अर्थ) रखताहै और इसी प्रकार भकार-पर्यंत क्रम है।

वैदिक वर्णमालाका क्रम भी वैज्ञानिक तथा सृष्टि नियमानुकूल है, जैसा कि पचवर्गोंसे विदित होताहै। कठमे लेकर क्रमक्रम ओष्ठपर्यन्त यह पाचों वर्ग फैले हुए हैं। अकार स्थानकी उत्पत्तिसे किंचित् हटकर कठस्थानसे प्रथम कवर्गकी उत्पत्ति है। इसके पूर्व अकारका मूल और अकारके पूर्व हकारका

मूल विद्यमानहै अर्थात् अकार और हकारके पश्चात् कवर्गका ही स्थान है, अकारके धाराप्रवाहिक शब्दको सबसे प्रथम ककार ही रोकता और बाधता है। इस लिये ककारका अर्थ बांधना मानागया है। ककार, अकार जैसे अक्षरको बाध देताहै इस लिये इसे बलवान् बडा और प्रभावशाली आदि भी कह सकते हैं। यही कारण है कि ब्राह्मणग्रथोंमे ककार "प्रजापति" अर्थमें आया है।

यों तो ककारादि सभी अक्षर अपने अपने कालमें दूसरे शब्दको बाधकर स्वय प्रकाशित होतेहैं, परतु सबसे प्रथम और सबसे आगे ककार ही कंठ-मूलमें शब्दको बाधताहै इसलिये "बाधना" अर्थ ककारके लिये ही रूढि है। ककार ऐसे स्थानसे उत्पन्न होताहै कि जिससे वह सबसे पहले अकार और हकारको बाधताहै इसलिये भी वह विशेष कर 'बाधने' 'रोकने' 'अटकाने' आदि अर्थोंमें आया है। जैसा कि "क" "का" आदि शब्दों और उनके 'कौन' 'क्या' आदि अर्थोंसे ज्ञात होताहै। *

इन्हीं भावोंको लेकर इसका ' क ' यह रूप बनाया गया है। यह रूप स्पष्टतया बता रहाहै कि अकारवाली सीधी शब्द रेखाको इसने मूलमें जाकर बाधा है। केवल अकारको ही नहीं बाधा किन्तु हकारको भी रोका है। यही कारण है कि इसका बधन अकार रेखाके दोनो ओर हुआ है अर्थात् अकार और हकार दोनोंको बाधते हुए दिखलाया गया है।

हम हकारके वर्णनमें बताआये हैं कि जब हकार किसी अक्षरके साथ मिलताहै तो उस अक्षरके विरुद्ध अर्थ पैदा करदेताहै। यहा ककारके उच्चारण के साथ हकारकी नदी खोलनेमात्रसे जो शब्द सुनाई पडताहै वह "ख" है। खकारका अर्थ उपर्युक्त विवरणानुसार "क" के विरुद्ध होना चाहिये, जहां ककारका अर्थ 'बाधना' होता था यहा खकारका अर्थ "खुला" होताहै। और आकाशके लिये रूढि है। आकाशकी भाति बधन रहित खुलीहुई चीज ससारमें दूसरी कोई नहीं है। इसी लिये "ख" आकाश, पोल, गगन और 'छिद्र' आदि अर्थोंमे आताहै।

---

* ककारको तापर्य में रोकने, बांधने, शका करने, उलझने आदिमें समझना चाहिये।

ककारमें हकारका चिह्न मिलानेसे खकार का ' ' 'यह रूप होताहै ।

इस अक्षरके स्तम्भमें केवल एक ही ओर बंधन है, जो सिर्फ अकारको ही बांधे हुए है और हकारके लिये दूसरी ओर खुला रखा है । हकारकी नाभि रेखा अकारमें जोड दीगईहै, जो ऊपरके खकार चित्रसे प्रकट है। इस प्रकारसे 'क' और 'ह' के संयोगसे 'खकार'का अर्थ और रूप बना है ।

'ग' और 'घ'

ककारके ही स्थान और ककारके ही प्रयत्नसे केवल हकारके संयोगमात्रसे खकार बनगया था, अब उसी स्थान और उसी प्रयत्नसे दूसरा अक्षर नहीं बन सकता। दूसरे अक्षरके लिये स्थान और प्रयत्न दोनोंमें फेरफार करना पडेगा और कण्ठमें ही देखना होगा कि ककार और खकार स्थानके पास ही और कौनसा अक्षर निकल सकताहै ।

'क' स्थानसे जरा हटकर और जिह्वा प्रयत्नको 'क' प्रयत्नकी अपेक्षा जरा दबाकर बोलनेसे गकारका उच्चारण होताहै । गकारके लिये जबतक 'क' स्थान और 'क' प्रयत्न छोडकर आगे न बढा जाय, कभी संभव नहीं है कि 'ग' शब्द उच्चरित होकर सुनाईपडे। अतएव स्थानान्तरित होनेसे अर्थात प्रथमस्थानप्रयत्नमे गतिहोनेसे गकारका अर्थ गमन, हटना, स्थान छोडना और पृथक् होना आदि हुआ है, और 'ग' धातु गमन अर्थमें लीगई है ।

इसका चित्रकार ' ' यह रूप भी इसी अर्थको सूचित करताहै । कोई भी गतिका चित्र बनाते समय स्थानान्तर रेखा ही दिखलाकर

गतिका रूप बना सकताहै । इसके चित्रसम्पादकने भी बडाही कौशल्य किया है । उसने गकारका ' ' 'यह रूप बनाकर ऊपर नीचे आगलबगल जिधरसे देखिये उधरसे गति करता हुआ भाव दिखायाहै, किन्तु बिना अकार संयोगके इसका शब्द स्पष्ट नहीं होता इसलिये '।' यह अकार स्तम्भ जोडकर ऊपर लिखित रूप बनादिया है।

इसी गकारमें हकार जोडनेसे घकार होताहै और हकारकी प्रकृतिके अनु-

सार गकारके विरुद्ध अर्थ होजाताहै । गकारका अर्थ गति गमन पृथक्ता है तो इसका अर्थ 'एकानट' 'ठहराव' और 'एकाग्रता' है । यही कारण है कि घकार सम्बन्धी शब्द 'घन' 'सघन' 'संघट्ट' 'घट' 'घोर' 'मेघ,' 'घनीभूत' आदि ढंगके होतेहैं । इसका रूप गकारमें हकारका चिह्न लगाकर ' घ ' इस प्रकार बनायागया है।

' च ' और ' छ '

कण्ठस्थानी कवर्गको ङकारपर्यन्त खतम करके आवश्यकता हुई कि कण्ठसे जरा हटकर और प्रयत्नको भी जरा बदलकर कोई दूसरा वर्ग आरम्भ किया जाय । कण्ठके बाद ही ओष्ठकी ओर जो स्थान और प्रयत्न हो सकता था वह ' चवर्ग ' है । चवर्गका प्रथम अक्षर ' चकार ' अपने वर्गको फिर आरम्भ करता है इसलिये चकारका अर्थ फिर पुनः २, बाद, दूसरा और अन्य आदि किया गया है । यह ऊपर नीचेके जिह्वा और तालुको मिलाताहै मिलना बिना दोके नहीं होता अत' उसका अर्थ भिन्न भी है । फिर बाद, पुनः आदि मात्र किसी पूर्ण पदार्थमें नहीं होते । पुन. पुन' भिन्न २ मात्र तभीतक रहते हैं जबतक कोई पदार्थ अपूर्ण है, अतएव चकारका अर्थ अपूर्ण और अङ्गहीन आदि भी होता है । अपूर्णको खण्ड खण्ड भी कह सकते हैं, क्योंकि खण्ड खण्ड अथवा पुन' पुनः और भिन्न भिन्न में कोई अन्तर नहीं है।

इसी भावको लेकर इसका ' च ' यह रूपबनाया गया है। तालु और जिह्वाका मिलान तथा अपूर्ण और पुन: पुन' अथवा खण्ड खण्डका एक साथ दर्शानेवाला '=' यह चित्र बनाकर चित्रकारने कमाल कर दिया है। तुलसीदास कहते हैं, ' देखे चाप खण्ड महि डारे' उक्त चित्रमें खण्ड खण्ड दिखलाकर चित्रकारने मानो उक्त कविताकी भांति चित्र विज्ञानकी कविता की है । इन्हीं दो पाइयोंमें अकार जोडनेसे ऊपरका रूप होता है ।

चकारमें हकार मिलनेसे ' छ ' होता है । हकार अपनी प्रकृतिके अनुसार चकारमें भी मिलकर चकारके विरुद्ध अर्थ पैदा करता है जहां चकार पुन पुन., खण्ड खण्ड, अपूर्ण,-अङ्गहीन आदि अर्थोंका द्योतक था वहां

हकारके मिलनेसे छकार ' छाया ' 'आच्छादन' ' छत्र ' और ' परिच्छद ' आदि शब्दोंमें मिलकर सांगोपांग पूर्ण तथा अखण्ड आदि अर्थकी झलक मार रहा है ' छन्द ' शब्दके अन्दर घुसकर उसने अपना रूप बिल्कुल ही प्रकट कर दिया है, क्योंकि छन्दका अर्थ ज्ञान है। ज्ञानमें कभी खण्डभाव नहीं होता। वह हर समय हर जगह अपने पूर्णरूपसे विद्यमान है। उपरोक्त चकार चिन्हमें हकारका संक्षिप्त रूप मिलाकर ' ' इस प्रकार छकार बनाया गया है इसमें चकारका पूर्ण रूप और हकारकी निचली रेखा मिली हुई है।

'ज' और 'झ'

जिस प्रकार ' क ' और ' ख ' के बाद दूसरे स्थान और प्रयत्नसे कंठ स्थानमें ही गकारके लिये स्थान और प्रयत्न बदलना पड़ा था और अपने वर्गके मूल कवर्ग स्थानसे गति करजानेके कारण गकारका अर्थ " गति " हुआ था, ठीक उसी प्रकार ' च ' और ' छ ' से आगे चलकर और किंचित् दूसरे प्रयत्नसे पैदा हुए जकारका अर्थ भी पैदा होना, जन्म लेना, उत्पन्न होना, और नूतनत्व आदि है। ज=जन्म, जननी आदि इसी धातुसे बनते हैं। पैदा होनेका तात्पर्य केवल नूतन रूप धारण करना या विकाश प्राप्त करना है। नूतन रूप बिना गतिके हो नहीं सकता। इसलिये गकारकी भांति इसका भी अर्थ गति अर्थात् जन्म रखा गया है। यही बात इसके रूपसे भी पाई जाती है।कोई भी चित्रकार जब किसी पदार्थके उत्पन्न करनेका चित्र खींचना चाहता है तो सबसे पहिले उसका ध्यान किसी बीजांकुरकी ओर जाता है। इसीभावको लेकर इस जकारका रूप ' ' इस प्रकार बनाया गया है इस रूपमें " " इतना किसी बीजके अंकुरका चित्रहै और ' ' यह सकार- की एक सीधी रेखा लगी हुई है।

जकारमें हकार जोड़नेसे ' झ ' होता है और जकारके विरुद्ध अर्थ रखता है। जन्मके विरुद्ध मृत्यु हो सकता है, इसीलिये ' झ ' का धात्वर्थ नाश होना है। झ=झृणाति आदि शब्द बनते हैं, जो 'मृत्यु' 'नाश' आदिके

सूचक है । जकारमें हकारकी रेखा जोडकर इसका रूप ' ' इस प्रकार बनाया गया है । इसमें जकारका पूरा रूप और हकारका निचला हिस्सा मिला हुआ है ।

'ट' और 'ठ'

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि कवर्ग और चवर्ग आदि क्रमशः ओष्ठकी ओर आरहेहैं । यह टवर्ग पांचों वर्गोंमें मध्यस्थानीय है । मध्य तालुमें जिह्वाके संयोगसे इसका उच्चारण होताहै । वर्गसंख्या और स्थानप्रयत्न दोनों दशाओंमें यह मध्यम है । अतएव टकार मध्यम, साधारण आदि अर्थोंमें आताहै । साधारण दशा संशय—सदिग्ध,—असमंजसभाव युक्त होतीहै । अतः टकार निर्बल अर्थमें भी लियाजाताहै । निर्बलता ही संकुचित करतीहै इसलिये 'संकोच' वा दबाव अर्थमें भी इसका उपयोग हुआ है । निर्बलता और दबाव प्राप्त करनेकी इच्छा कभी किसीकी नहीं होती । इससे इसका अर्थ "इच्छा विरुद्ध" भी हुआ है । तात्पर्य यह है कि टकार इन्हीं उपर्युक्त नम्र और निर्बल भावोंका द्योतक है । जो इससे बने हुए कष्ट, रुष्ट, नष्ट, भ्रष्ट, दुष्ट, पुष्ट आदि शब्दोंसे पायाजाताहै । इन्हीं उपर्युक्त भावोंको लेकर ही इसका ' ' यहरूप भी बनायागया है । इसमें मध्यम दशा और तालुमें छूतीहुई जिह्वा दोनों भावोंका एक साथ समावेश है । मध्यम दशाका प्रदर्शक " " यह रूप अपने चित्रकारका अच्छा प्रमाण है । आजतक जितने चित्रकार हुए हैं, सबने पूर्णताका ' ' ऐसा ही चित्र बनाया है । इसके मध्यमें एक रेखा डालो तो ' ' ऐसा रूप होगा । और मध्यसे हुए दोनों भागोंको अलग कर डालें तो एक भागका वही रूप होगा, जो ऊपर टकारका बतलायागया है । इसीमें अकारकी रेखा जोडनेसे इसका पूर्ण रूप होताहै । बोलते समय टकारके उच्चारणमें तालुको छूतीहुई जिह्वा जो रूप धारण करतीहै, यह टकार उस रूपका भी मानो चित्र है । और अर्ध रूप होनेसे अपना विकल्पभाव दर्शाताहै ।

टकारमें हकार जोडनेसे ठकार होजाताहै । और अर्थ भी उलटजाताहै । टकारके मध्यमतादि विकल और निर्बल भाव दूर होकर निश्चय, प्रगल्भता पूर्णता आदि भाव पैदा होजातेहैं, जो इससे बनेहुए कठिन, कठोर, शठ, मठादि शब्दोंसे पायेजातेहैं । इस टकारके रूपमें केवल हकारकी नाभिरेखा जोडनेसे ' ठ ' यह रूप होताहै । इसमें टकारका पूर्ण रूप और हकारकी रेखा मिलीहुई है ।

'ड' और 'ढ'
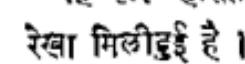
जिस प्रकार 'क' 'ख' के बाद 'ग' और 'च' 'छ' के बाद 'ज' स्थानांतर व प्रयत्नान्तर होनेके कारण गति और उत्पत्ति आदि अर्थोंमें लिये गये हैं उसी प्रकार 'ट' 'ठ' के बाद भिन्नस्थान और भिन्न प्रयत्नसे उच्चरित होनेके कारण यह डकार भी क्रियार्थमें लियागया है । और डु (क्रिञ्=करणे) धातु अर्थात् क्रियार्थमें व्यवहृत हुआ है। बिना दो पदार्थोंके संयोगके कोई भी क्रिया नहीं हो सकती और संयोग प्राकृतिक होताहै । इसलिये यह संयोगात्मक क्रिया प्रकृति अर्थमें घटती है । यही कारण है कि डकार जड, पिंड, रुंड मुंड, प्रचंडादि शब्दोंमें आकर अपनी जडताका परिचय दे रहाहै । यही अर्थ इसके रूपसे भी प्रकट होताहै । क्रियाका चित्र ' S ' इससे अच्छा और हो नहीं सकता और न जडताका भान ही इससे अधिक दिखाया जा सकताहै । इसके प्रत्येक विभाग क्रियामें परिणत है, तथा सायोगिक भाव दिखारहेहै । इसके गठन (Constitution) से ही पता लगताहै कि इसमें जरा भी नम्रता, सजीवता नहीं है । इसीमें अकारकी रेखा जोडकर इसका यह ' ड ' पूर्ण रूप बनाया गया है ।

डकारमें हकार जुडनेसे ढकार शब्द बनताहै और डकारके विरुद्ध अर्थ ध्वनित करताहै, जहां डकार क्रिया और अचेतन अर्थमें था वहा ढकार निश्चित निश्चल, धारित, आधिपत्यादि अर्थोंमें लियागया है । इससे बने हुए आरूढ, रूढि, दृढ आदि शब्द इसकी निश्चलता और सजीवताको बताते हैं । क्यों कि दृढता बिना चेतनके हो नहीं सकती और बिना ज्ञानके कोई किसीपर आरूढभी नहीं होसकता और न आधिपत्य अथवा निश्चलता ही जमा सकता है ।

इसका रूप बनानेके लिये टकारमें केवल हकारकी नाभि रेखा मिलानेसे यह रूप' S ' बनताहै । इसमें टकारका पूरा रूप और हकारकी नाभिरेखा लगी हुई है ।

'त' और 'थ'

कवर्गसे लेकर टवर्गतक जितने स्थानों और प्रयत्नोंका वर्णन हुआ है, जिह्वाके लिये कहीं भी बीचमें रुकावट नहीं आई, किंतु टवर्गसे आगे बढते ही जिह्वाको दातोंकी चौखटसे टकराना पडा और दातोंके नीचले स्थानमें कुछ प्रयत्न करनेपर जो शब्द सुनाई पडा । वह तकार है । तकारका उच्चारण दातोंके तलभागसे होताहै इसलिये तकार 'तलस्थान' 'नीचे' आदि अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है । और "त" धातु किनारेके अर्थमें व्यवहृत है। तल और पारमें कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही भावके सूचक हैं । इन्हीं अर्थोंके सूचित करानेवाले तल, तरल,तथा आदि शब्द हैं,जो'नीचे' 'एक'और 'आदि' भावके सूचक हैं । और 'त' धातुसे 'तरति' आदि शब्द बनतेहैं । इसी भावको लेकर इसका ' ┌┐ ' यह रूप तलको बनारहाहै । इसीमें अकारका चिह्न जोडनेमें' ┌┼┐ 'ऐसा पूर्णरूप बनजाताहै।

'त' में 'ह' मिलानेसे 'थ' अक्षर बनताहै । और 'त'के विरुद्ध 'ऊपर' 'ठहरना' 'आधेय' आदि अर्थोंको ध्वनित करताहै। तकार यदि 'नीचे" अर्थमें तो "थकार" ऊपर अर्थमें है । 'त' इधर तो 'थ' उधर। तकार आधार तो थकार आधेय, तकार इस पार तो थकार उस पार—तात्पर्य यह कि तकार वा थकार दोनों एक सपुटपात्रकी भाति हैं । सपुटपात्रका जो भाग जमीनपर है वह 'त' और जो भाग ऊपरको है वह "थ" है । इसी तरह नदीका किनारा जो हमसे दूर है वह 'त' और जो हमारे पासहै वह 'थ' है । थकारका रूप तकारमें हकारकी नलीको जोडकर बनायागया है । जो इस प्रकार ' ┌┼┐ ' है । इसमें तकारका पूर्णरूप और हकारकी नाभि-रेखा लगीहुई है ।

'द' और 'ध'

कवर्गमे 'ग' चवर्गमे 'ज' टवर्गमें 'ड' जिस प्रकार स्थानांतर होनेके कारण गति, जन्म और क्रियाके वाचक हुए हैं उसी प्रकार इस तवर्गमें दकार भी स्थानांतर होनेकी वजहसे गति अर्थ रखताहै। और "दा" धातुका "देना" अर्थ कियागया है, जो ठीक स्थानांतर परिवर्तन आदिका वाचक है। क्यों कि जब कोई पदार्थ किसीको दियाजाताहै तो उसका स्थानांतर जरूर होताहै—गति अवश्यमेव होतीहै—क्रिया निश्चय होतीहै—परिवर्तन अथवा नूतनत्व वा जन्म जरूर होताहै। इसी लिये दकारका अर्थ स्थानांतर अर्थात् "दान" कियागया है यही भाव इसके स्वरूपमें भी दिखलाया गया है। पूर्णता अथवा किसी भाण्डारका चित्र '○' यही हो सकताहै। पूर्ण पदार्थसे अगर कुछ निकाल लियाजाय—देदियाजाय—स्थानान्तर करदियाजाय—तो वह कम दिखलाई पडेगा—और जितनी क्षति हुई होगी वह भी दिखेगी। दकारके ' ' इस रूपमें यह दोनों बातें दिखलाई गईहैं। दकारके इस रूपसे अच्छी तरह प्रकट होरहाहै कि किसी पूर्ण वस्तुसे नीचेका लटकता भाग निकाल डाला गया है, देदियागया है। इसीमें अकारका चिह्न जोडनेसे ' ' इस प्रकारका पूर्ण 'द' बनताहै।

दकारमें हकार जोडनेसे 'ध' शब्द होताहै। और जहां दकारका अर्थ देना होताहै वहां धकारका अर्थ तद्विरुद्ध 'न देना' अर्थात् धारण करना, रखलेना आदि होताहै। इसी अभिप्रायसे 'ध' धातुका अर्थ ही धारण करना है, और धरणी, धृति, धैर्यादि शब्द बनतेहैं। इसका रूप केवल दकारमें हकारका चिह्न मिलानेसे ' ' ऐसा बनताहै।

'प' और 'फ'

कंठ तालु और दंतके तलभागमें होतेहुए ओष्ठोंकी ओर आकर ओष्ठसे प्रथम जो अक्षर उच्चरित हुआ वह "प" है। अभीतक मुख बंद नहीं था। सभी अक्षरोंके उच्चारणमें मुखद्वार खुला था, किंतु पकारके उच्चारणका संकल्प होते ही ओष्ठकपाट बंद होगया। और शब्दधारा मुखकी मुखमें ही

रहगई, यही रक्षित होगई । इसी कारण पकार "रक्षा" अर्थमें आया है और "पा=रक्षणे" धातु बनायागया है तथा पा, पिता, पातु, पालन आदि शब्दोंमें प्रयुक्त हुआ है । इसका रूप दो ओष्ठोंको ' = ' इस प्रकार जोडतेहुए और इसीमें रक्षाम्वरूप सदूकका चित्र बनातेहुए ' □ ' इस प्रकार बनाया-गया है । इसमें अकारकी मात्रा जोडनेसे ' प ' यह पूर्ण रूप बनगयाहै ।
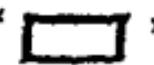
पकारमें हकारके मिलनेसे 'फ' होताहै । और पै के विरुद्ध खोलना और खुलना अर्थ रखताहै । जिस प्रकार रक्षितसे अभिप्राय 'बंद' है उसी प्रकार अरक्षितसे अभिप्राय खुलाहुआ है। ओष्ठबंद करके हकारका उच्चारण करो,शुद्ध शब्द फकार होगा। जिस प्रकार सदूकमें छोटासा छिद्र करदेनेसे सदूकमें रक्षित पदार्थ अपनी सूचना बाहर देने लगतेहै उसी प्रकार बंद ओष्ठोंमें जरासा छिद्र करने और हकारका उच्चारण करनेसे फकार अपना रूप प्रदर्शित करताहै । यही कारण है कि इसमें बनेहुए 'फुल्ल' 'प्रफुल्ल' 'स्फुट' 'प्रस्फुट' 'स्फुरण' आदि शब्द खुलने अर्थमें आये हैं । इसका रूप पकारमें हकारका चिह्न जोडकर ' फ ' इस प्रकार बनाया गया है । जो सदूकमें छिद्र होनेका प्रमाण देरहा है ।

'ब' और 'भ'

कवर्गका गकार, चवर्गका जकार, टवर्गका डकार और तवर्गका दकार जिस प्रकार स्थानान्तर होनेके कारण क्रमशः गति, जन्म, क्रिया, देना आदि अर्थ रखते है, ठीक उसी प्रकार पकार और फकारको एक ही स्थान और एक ही प्रयत्नसे बोलकर आवश्यकता है कि जरा आगे हटकर और प्रयत्न बदलकर कोई पूर्वोक्त प्रकारका क्रियात्मक अक्षर निकालें, किन्तु अब ओष्ठमें आगे बढनेकी जगह नहीं है, अतएव भीतरसे ही जरा गालोंके प्रयत्नको प्रकट बनाकर बकार अक्षर बनाया गया है, इसीलिये इसका ' अन्तर्गति ' अर्थात् ' घुसना ' ' समाना ' ' छिपना ' आदि भावोंको सूचित करने-

वाला अर्थ होता है। इस 'छिपाव' या 'गुप्त क्रिया' का भाव लेकर इसका ⊏⊐ यह रूप दिखाया गया है। बीचकी रेखा छिपा हुआ भाव दिखा रही है और बाहरका चौकोर घेरा कोठरीका इशारह करता है। इसीमें अकार रेखा जोडनेसे ब यह रूप होता है।

बकारमे हकार मिलनेसे भ अक्षर बनता है और बकारके विरुद्ध 'प्रकट,' 'जाहिर' 'बाहर' आदि अर्थ रखता है, इसलिये 'भा' धातु प्रकाश अर्थमें आता है और 'आभा' 'प्रभा' आदि शब्द बनते हैं। इसका रूप बकारमें हकारका चिह्न मिलाकर भ इस प्रकार बनाया गया है।

'श' 'ष' और 'स'

शुरू निबंधमे बतलाया गया है कि जितने अक्षर बिना स्थानके केवल प्रयत्नसे बोलेजातेहैं वे स्वर और जिनमे स्थान प्रयत्न दोनोंका उपयोग होता है वे व्यंजन है। ये श, ष, स, भी स्वर ही होते, अगर अपने अपने स्थानको न पकडते। अ, ई, उ की भांति मुखमें एक सीटीकासा स्वर भी होताहै। उसी स्वरको लेकर यह तीनों अक्षर, छोटे बडे शब्दके कारण तीन प्रकारके होगये हैं, और सभी प्राय: छोटे बडे क्रमसे एक ही अर्थ रखते हैं। किसीको दूरसे इत्तिला देनेके लिये पहले जमानेमें शंख, फिर नफीरी और आजकल ब्युगुल काममे आताहै। परतु थोडे फासलेके लिये 'सीटी'और बहुत ही थोडे फासलेके लिये इस सकारका ही प्रयोग होताहै। मुम्बईमें तो इसकी इतनी अधिकता है कि बिना इसके काम ही नहीं चलता।

दूसरेको सूचना देना अपने अभिप्रायका प्रकाश करना है। इसी लिये इन तीनों अक्षरोंका अर्थ 'प्रकाश' करना ही होताहै, किन्तु जो अक्षर जितना प्रबल अर्थात् बडा है उससे उतने ही दर्जेका प्रकाश बोध करायागया है।

अधिकसे अधिक प्रकाश अर्थात् हस्तामलक प्रकाशको ज्ञान कहतेहैं इसलिये इन तीनोंमें बडे "ष" का अर्थ ज्ञान होताहै जिससे ऋषि आदि शब्द बनतेहैं, किन्तु मध्यम शकारसे प्रकाश, आकाश, नाश आदि शब्द बनतेहैं और प्रत्यक्ष

आग्नेय प्रकाशका अर्थ रखते हैं । इसी प्रकार निकृष्ट सकार शब्दके द्वारा इत्तिला पहुंचाना, जाहिर करना, प्रकाशित करना अर्थ लिया गया है और 'स–शब्दे' धातु बनायागया है, जिससे 'ह्लसति' आदि परस्मैपदसूचक शब्दबनते हैं।

'स' हमेशा 'साथ' अर्थमेंभी आताहै और बहुधा तृतीय पुरुषके लिये भी प्रयुक्त होताहै । इन दोनोंसे भी जाहिर करना ही अर्थ निकलताहै क्योंकि जो साथ है वह प्रगट है ही और जो तृतीय दूर खडा है वह भी प्रकट ही है। इन्हीं भावोंको लेकर छोटे बडे ष, श, स का रूप बनायागया है । मुखाकृति बनाकर जिह्वाको तालुमें लगानेसे और 'अ'की सहायता देनेसे यह शब्द होताहै । यहां इसके रूपमें ' ◯' यह भाग मुखाकृति और इसमें 'ཨ' इस प्रकार जिह्वाका तालुमें लगना और " | " इस प्रकार अकारका लगना बनाकर इन तीनोंके रूपोंको क्रमशः पूर्णताको पहुंचायागया है यथा–' ष श स ' अर्थात् ष, श, स ।+

'क्ष' 'त्र' 'ज्ञ'

क्ष, त्र, ज्ञ, तीनों संयुक्ताक्षर हैं । क्ष, 'क' और 'ष' के संयोगसे' त्र' 'त' और 'र'के संयोगसे और ज्ञ, 'ज' और 'ञ' के संयोगसे बना है ।

ककारका अर्थ बाधना, रोकना और षकार * का अर्थ ज्ञान, दोनोंसे बने हुए 'क्ष' का अर्थ 'रुकाहुआ ज्ञान, बन्द ज्ञान, अज्ञान, 'निर्जीव' अर्थात् नाश अथवा मृत्यु आदि होताहै । इससे बने हुए क्षय क्षयी और पक्ष आदि शब्द नष्ट अर्थको बतलातेहैं । इसका रूप भी उक्त दोनों अक्षरोंके योगसे क्ष इस प्रकार बना है। इसमें 'क' और 'ष' का रूप मिला हुआ है ।

+ मालूम नहीं, कितने वर्षोंसे यह अंधेर चला आताहै कि पहिला 'ष' तो दूसरा करदिया गया और दूसरा 'श' प्रथम बनादियागया । 'ऋषि' पीछे- पडगये और 'शख' आगे बढ गये । परन्तु किसी ऋषिपुत्रने इसके विरुद्ध आवाज न उठाई ! ।

* षकार भी स्वरसे मिलता हुआ एक प्रकारका अर्धस्वर ही है, तभी तो क्षकार अक्षर उत्पन्नकर सका है । न में जिस प्रकार 'ऋ' स्वर मिला है और 'ह्र'में 'न' अनुस्वार-। स्वरका प्रतिनिधि मिला है उसी प्रकार 'क्ष' में भी 'ष' मिला है । इन्हीं तीनों स्वरों-की सहायताके कारण ये तीनों स्वतन्त्र अक्षर माने गये हैं ।

त्रकारमें तकारका अर्थ नीचेतक और रकारका अर्थ देना है। दोनोंको मिलकर त्रकारका अर्थ 'नीचेतक देना'—'सब देना' 'कुल देना' हुआ यही कारण है कि 'त्र' 'एकत्र' 'सर्वत्र' आदि शब्दोंमें आकर 'कुल'—'सर्व' आदि अर्थ सूचित करताहै। इसका रूप तकार और रकारके संयोगसे इस प्रकार बना है।

'ज्ञ' अक्षरमें जकारका अर्थ 'जन्म' और नकारका अर्थ 'नहीं' है। अतः दोनोंसे बनेहुए ज्ञकारका अर्थ 'अजन्मा' 'नित्य' हुआ। 'अजन्मा' 'नित्य' दोही पदार्थ हैं, एक चेतन दूसरा जड। एकका गुण कर्म दूसरेका ज्ञान है इसी लिये यह 'ज्ञ' कर्म सूचित करानेके लिये 'यज्ञ' आदि शब्दोंमें और ज्ञान सूचित करानेके लिये 'ज्ञान' और 'प्रज्ञा' आदि शब्दोंमें आताहै और स्वय ज्ञा= ज्ञान धातु होकर अपना अर्थ बतलाताहै। इसका रूप 'ज' और 'ञ' के संयोगसे ' ' इस प्रकार बनायागया है।

'ळ'

ळकारके उच्चारण करनेमे सारे स्थान और सारे प्रयत्न काममें लायेजातेहैं, इसी लिये समस्त-स्थान प्रयत्नसे उत्पन्न होनेवाले इस अक्षरका अर्थ 'वाणी' लियागया है। क्यों कि वाणी सब स्थानों और प्रयत्नोंसे बनतीहै। वेदके 'अग्निमीळे' मन्त्रमें यह अक्षर 'ईळे' शब्दके अन्दर आताहै। वेदमें ही एक जगह लिखा है कि 'इळा गिरा मनुर्हितम्'। अर्थात् मनुष्यकी वाणीका नाम इळा है। इसी तरह निघण्टुमें भी ईळा शब्द वाणीके पर्यायमें कहागया है।

इसका रूप मुखाकृति और शब्दाकृतिके समस्त अवयवोंसे बनायागयाहै। यथा ' ○ ' यह अकाराकृति '०' यह अनुस्वाराकृति और ' | ' यह शब्द-धाराकृति है। इन्हीं तीनोंके योगसे वाणीका सारा विषय स्पष्ट होताहै। अतः इसके ' ' इस रूपमे उपरोक्त तीनोंका समावेश है।

त्रकारमें तकारका अर्थ नीचेतक और रकारका अर्थ देना है। दोनोंको मिलकर त्रकारका अर्थ 'नीचेतक देना'—'सब देना' 'कुछ देना' हुआ यही कारण है कि 'त्र' 'एकत्र' 'सर्वत्र' आदि शब्दोंमें आकर 'कुल'—'सर्व' आदि अर्थ सूचित करताहै। इसका रूप तकार और रकारके संयोगसे 'त्र' इस प्रकार बना है।

'ज्ञ' अक्षरमें जकारका अर्थ 'जन्म' और ञकारका अर्थ 'नहीं' है। अतः दोनोंसे बनेहुए ज्ञकारका अर्थ 'अजन्मा' 'नित्य' हुआ। 'अजन्मा' 'नित्य' दोही पदार्थ हैं, एक चेतन दूसरा जड। एकका गुण कर्म दूसरेका ज्ञान है इसी लिये यह 'ज्ञ' कर्म सूचित करानेके लिये 'यज्ञ' आदि शब्दोंमें और ज्ञान सूचित करानेके लिये 'ज्ञान' और 'प्रज्ञा' आदि शब्दोंमें आताहै और स्वय ज्ञा= ज्ञान धातु होकर अपना अर्थ बतलाताहै। इसका रूप 'ज' और 'ञ'के संयोगसे 'ज्ञ' इस प्रकार बनायागया है।

'ळ'

ळकारके उच्चारण करनेमें सारे स्थान और सारे प्रयत्न काममें लायेजातेहैं, इसी लिये समस्त-स्थान प्रयत्नसे उत्पन्न होनेवाले इस अक्षरका अर्थ 'वाणी' लियागया है। क्यों कि वाणी सब स्थानों और प्रयत्नोंसे बनतीहै। वेदके 'अग्निमीळे' मन्त्रमें यह अक्षर 'ईळे' शब्दके अन्दर आताहै। वेदमें ही एक जगह लिखा है कि 'इळा गिरा मनुर्हितम्'। अर्थात् मनुष्यकी वाणीका नाम इळा है। इसी तरह निघण्टुमें भी ईळा शब्द वाणीके पर्यायमें कहागया है।

इसका रूप मुखाकृति और शब्दाकृतिके समस्त अवयवोंसे बनायागयाहै। यथा '○' यह अकाराकृति- '०' यह अनुस्वाराकृति और '|' यह शब्द-धाराकृति है। इन्हीं तीनोंके योगसे वाणीका सारा विषय स्पष्ट होताहै, अतः इसके 'ळ' इस रूपमें उपरोक्त तीनोंका समावेश है।

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ।

अंगरेजीका 'गुड, बेटर, बेस्ट, और हिन्दीका 'अच्छा, बहुत अच्छा, निहायत अच्छा जो भाव रखताहै वही ह्रस्व दीर्घ और प्लुतमें समझना चाहिये । उदाहरणके लिये ह्रस्व 'अ' व्यापक अर्थात् साधारण वस्तुस्थिति अर्थमेंहै तो दीर्घ आ 'सब कुछ' all अर्थमें और प्लुत 'आ३' सम्पूर्ण whole अर्थमें लियाजायगा और यही प्रथा ६३ व ६४ अक्षरोंमें जारी रहना चाहिये, क्यों कि इतने ही अक्षर मानेगये हैं यथा—'त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः' (पाणिनि—शिक्षा)

तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ।

परिशिष्ट।

अक्षर विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्रश्न थे सबका उत्तर देते हुए हमने वेदभाषाको मूल भाषा बताकर उसके धातुओंके बीजाक्षरोंका अर्थ यथामति उन्हीं उन्हीं अक्षरोंसे ही निकालकर लिखदिया है और बतलां दिया है कि इस प्रकार आदिसे अन्ततक समस्त मूलाक्षर अपना अपना स्वाभाविक अर्थ रखते हैं। इन्हीं अक्षरार्थोंको ध्यानमें रखकर समस्त धातु बनाये गये हैं और अक्षरार्थानुसार धातु भी स्वाभाविक ही अर्थ बतलाते हैं। जब यह भाषा कुदरती तरीकेसे–स्वाभाविक रीतिसे अपना कुदरती अर्थ रखती है तो इस भाषाके कुदरती होनेमें–स्वाभाविक होनेमें——आदि भाषा होनेमें और ईश्वरीय भाषा होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा, अत अब हम दावेके साथ कहते हैं कि 'वेदभाषा ही मूलभाषा और सब भाषाओंकी जननी है'।

यहा हम थोडेमें धातुओंको इन अक्षरार्थोंके साथ मिलाकर 'स्थाली पुलाकन्याय'से दिखलाना चाहते हैं कि ऋषियोंने धातुओंके जो यौगिक अर्थ माने हैं वे अक्षरार्थको लेकर ही जाने हैं अतएव हम पहिले यहा अपना किया हुआ अक्षरार्थ लिखते हैं और फिर धात्वर्थसे सम्बन्ध मिलाकर पुस्तक समाप्त करते हैं।

अक्षरार्थ ।

अ—सब, कुल, पूर्ण, व्यापक, अव्यय, एक, अखण्ड, अभाव, नहीं, शून्य आदि अर्थात् सन्धिमें इसका अर्थ अस्तित्व अथवा नास्तित्व होजाताहै ।

इ—वाला (जैसे मकानवाला) गति, नजदीक ।

ए—नहीं गति, गतिहीन, निश्चल पूर्ण ।

उ—ऊपर, दूर, वह, तथा, और आदि ।

ओ—अन्य नहीं, वही, दूसरा नहीं ।

ऋ—सत्य, गति, बाहर ।

ऌ—सत्य गति, भीतर ।

ः ङ ण न ञ म ं—नहीं, अभाव, शून्य ।

ह—निश्चय, अन्त, अभाव, सङ्कोच, निषेध ।

क—साधना, बलवान्, बड़ा, प्रभावशाली ।

ख—आकाश, पोल, खुला ।

ग—गमन, हटना, स्थान छोड़ना, पृथक् होना ।

घ—रुकावट, ठहराव, एकाग्रता ।

च—फिर, पुनः, बाद, दूसरा, अन्य, भिन्न, अपूर्ण, अङ्गहीन, गण्ड खण्ड।

छ—छाया, आच्छादन, छत्र, परिच्छद, अखण्ड आदि ।

ज—पैदा होना, जन्म लेना, उत्पन्न होना, नूतनत्व, गति ।

झ—नाश होना ।

ट—मध्यम, साधारण, निर्बल, सङ्कोच, इच्छा विरुद्ध ।

ठ—निश्चय, प्रगल्भता, पूर्णता ।

ड–क्रिया, प्रकृति, अचेतन जड़।

ढ–निश्चित, निश्चल, धारित, चेतन।

त–तलभाग, नीचे, इधर, आधार, इस पार, किनारा, अंतिम स्थान।

थ–ठहरना, आधेय, ऊपर, उधर, उस पार।

द–गति, देना, कम करना।

ध–न देना, धारण करना, रखलेना।

प–रक्षा।

फ–खोलना, खुलना।

ब–घुसना, समाना, छिपना।

भ–प्रकट, जाहिर, बाहर, प्रकाश।

य–पूर्ण गति, जो, भिन्न वस्तु।

र–देना, रमण करना।

ल–लेना, रमण करना।

व–अन्य, पूर्ण भिन्न, अथवा, गति, गध।

श ष स–ष=ज्ञान। श=प्रकाश। स=साथ, शब्द, वह।

क्ष–बध ज्ञान, अज्ञान, निर्जीव, नाश, मृत्यु।

त्र–नीचेतक देना, कुल देना, सब देना, कुल, सब, सर्व, समग्र।

ज्ञ–अजन्मा, नित्य, कर्म, ज्ञान।

ळ–वाणी।

धात्वर्थ ।

इ—गति
ऋ—गति
गा—जाना
जा—पैदा होना
ज्ञ—नाश होना
डु—(कृञ्) करना
त—पार
दा—देना
धा—धारण करना
पा—रक्षा करना
भा—प्रकाश करना
मा—नापना
रा—देना
ला—लेना
वा—गति-गन्ध
स्—शब्द करना
ज्ञा—ज्ञान

भग्—भा=प्रकाश, ग=गति अर्थात् 'गतिमान् प्रकाश'=क्रिया करता हुआ ज्ञान' 'बुद्धिपूर्वक काम करनेकी ताकत' नाम 'ऐश्वर्य' ।

णश्—ण=नहीं श=प्रकाश अर्थात् 'नहीं प्रकाश' 'अप्रकट' 'गायब' नाम 'अदर्शन'

चदि—च=बारबार, दि=देनेवाला अर्थात् बारबार देनेवाला, 'बदल बदलकर देनेवाला' मरजीके माफिक देनेवाला नाम आह्लाद । यह इसी लिये चन्द्रमाके लिये रूढि है ।

आप्—आ=चारों ओरसे प=रक्षा अर्थात् 'हर तरफ रक्षा किये हुए' 'हर तरफ विराजमान, नाम 'व्यापक' ।

'अक्' अ=नहीं, क=बाधना अर्थात् 'नहीं बांधना' (खुलाहुआ) अर्थ 'जाना' ।

'अक्ष् ' अ=नहीं, क्ष=नाश अर्थात् 'नहीं नाश' मतलब 'प्राप्त होना' 'जमा होना' 'एकत्र होना' ।

'इख्' इ=गति ख=खुला अर्थात् खुली गति, बेरोक, नाम 'जाना' ।

'इड़' इ–गति, ड–देना अर्थात् गति देना (जाना) अर्थ फेंकना, रखना, सोना।

'ऋध्' ऋ–सत्य, ध–धारण अर्थात् सावधारण, इकट्ठा करना अर्थ 'बढ़ाना' 'श्रीमान् होना'।

'ऋफ' ऋ=सत्य, फ–अरक्षा अर्थात् 'सत्य अरक्षा' मारडालना अर्थ 'वध करना' दुःख देना।

'अण्' अ=नहीं ण=अभाव अर्थात् कायम रहना अर्थ जीते रहना। (दो वार नहीं २ का अर्थ हां होताहै)।

'अद्' अ=नहीं, द–देना अर्थात् नहीं देना, रखना, खाना, भक्षण करना पेटमें रखना।

'एध' ए–पूर्ण गति, ध=धारण करना अर्थात् पूर्ण गति धारण करना, बढ़ना।

'एला' ए–पूर्ण गति, ला–लेना अर्थात् पूरा लेना स्वेच्छाचारिता, अर्थ क्रीडा करना, खेलना।

'नभ्' न=नहीं, भ=प्रकाश, अर्थात् जाहिर नहीं, नष्ट होना (न भाति)

'पस्' प–रखना, स–छूना, स्पर्श करना (पसयति)।

'वठ्' व=भीतर ठ=मजबूत–पराक्रमी होना, शक्तिमान् होना (वठति)।

'वद्' व=छुपा दा=देना निश्चल होना, स्थिरहोना (वदति)।

'वल्' व=भीतर ल=लेना अर्थात् भीतर लेना, नाम जीना, जीता रहना (वलयति)।

'हु' ह=अभाव उ=दूर–दूरतक अभाव अर्थात् नाश करना, जलाना, फूकना, यज्ञ करना।

'गुर' ग=गमन उ=और र–रमन अर्थात् गति और रमन नाम 'प्रयत्न' 'करना' 'उद्योग' करना।

'गल्' ग=गति, ल=लेना, गति लेना अर्थात् 'गिरना 'टपकना।

'दभ' द=देना, भ=प्रकाश अर्थात् प्रकाश देना, जाहिर करना (दभयति) 'आज्ञा करना'

'दम' द–देना, म–नहीं अर्थात् नहीं देना. स्वाधीन करना, (दाम्यति)

'नड्' न=नहीं ड–गति 'गति नहीं' अर्थात् भीड़ होना, 'एकत्र होना,